

उक्त

काशीमोक्ष-निर्णय

भाषानुवादसमेत ।

...शो यत्र न तत्र चित्रं धर्मार्थकामामृतरूपरूपः ।
...ः स हि विश्वरूपस्तस्मान्न काशीसदृशी त्रिलोकी ॥९८॥
का० ख० अ० ३ ।

—अनुवादक—
...अम्बिकादत्त उपाध्याय एम. ए. शास्त्री
तथा
श्रीगौरीशङ्कर गनेड़ीवाला ।



कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय, वाराणसी।

श्रीजगद्गुरुसुरेश्वराचार्यकृत-

श्रीकाशीमोक्षनिर्णय।

अनुवादक—

पं० अम्बिकादत्त उपाध्याय एम० ए०, शास्त्री

तथा

श्रीगौरीशङ्कर गनेड़ीवाला।

प्रकाशक—

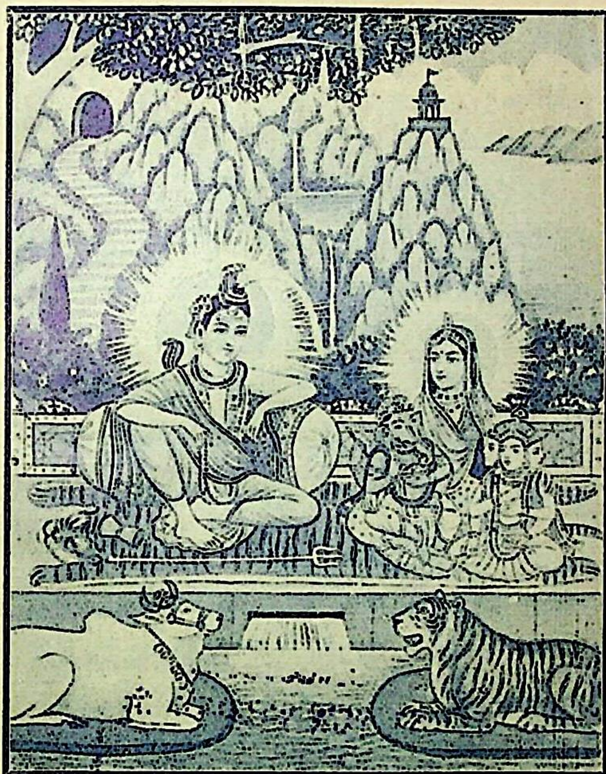
श्रीगौरीशङ्कर गनेड़ीवाला।

गोरखपुर।

प्रथम बार २००० | सन् १९२१ ई० | मूल्य पाँच आना

मुद्रक—सहादुररामजी,
हितैषी प्रिंटिंग वर्क्स, नीचीबाग, बनारस सिटी।

शिव-भक्त-माल



यत्राचार्यस्त्रिपुरविजयी साधनानां चतुर्णां
संपद्वासः सुलभमशनं स्वैरचारस्तपांसि ।
श्रोतव्यस्य श्रुतिरपि तपः श्रूयते जन्मभाजां
काले काश्यां सुकृतधनिकास्तत्र वासं लभन्ते ॥

समर्पण

प्रिय सहोदर वासुदेव !

एक तो तुम मेरे कनिष्ठ भ्राता और दूसरे भगवान् शङ्कर के भक्त थे। तुम अल्पायु में ही हम लोगों को छोड़ कर देव-दुर्लभ मोक्षदात्री परम पावन काशीपुरी में अनायास आकर काशीवासी हो गये। तुम्हें अपने जीवनकाल में काशी, भगवान् शङ्कर तथा जगज्जननी अन्नपूर्णा के चरणों में बड़ा प्रेम था।

काम की अधिकता से देर होने पर भी तुम विना शिवार्चन किए जल तक ग्रहण नहीं करते थे। अन्त समय में रोग की अवस्था में मूर्छा के पीछे कुछ होश आने पर हम लोगों को शोकग्रस्त देख कर आश्वासन के रूप में 'काशी' यह कहते हुए तुम सदा के लिए मौन हो गए थे।

अतएव काशीवासियों के लिए अति उपयोगी यह अनुवादसहित 'काशीमोक्ष-निर्णय' तुम्हें समर्पण करता हूं।

तुम्हारा—

गौरीशङ्कर।



श्रीगणेशाय नमः

प्रार्थना ।

सर्वशास्त्रों में पारंगत जगद्गुरु श्रीसुरेश्वराचार्यजी (मण्डन मिश्र) कृत यह काशीमोक्ष-निर्णय नामक निबन्ध काशी-वासियों के हितार्थ ही नहीं वरन् मुमुक्षुमात्र के कल्याणार्थ सं० १९४१ वि० में महाराजा हथुआ-नरेश ने शिला प्रेस द्वारा छपवाकर अपनी धर्म-प्रियता का परिचय दिया था; किन्तु वह केवल मूल-मात्र था, अतः संस्कृत के विद्वानों ने ही उससे लाभ उठाया और वह भी अब अप्राप्य सा हो रहा है। ऐसी अवस्था में पूज्यपाद पंकज परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ घनश्यामानन्दजी तीर्थने इसका पुनः प्रकाशन होना परम आवश्यक समझ कर मुझे आज्ञा दी। "आज्ञागुरूणामविचारणीया"। मैंने अपना परम सौभाग्य समझकर इस निबन्ध का हिन्दी अनुवाद पूज्य पं० अम्बिकादत्तजी उपाध्याय एम० ए० द्वारा कराकर पाठकों की पुनीत सेवा में प्रकाशित किया है इससे विद्वान् और सर्व-साधारण लोग काशी-वास के महत्त्व को भली भाँति समझकर लाभ उठा सकेंगे।

काशी में शरीर त्यागने से जीवमात्र को मुक्ति मिलती है, यह सिद्धान्त अटल है तथापि न जाने किस जन्म के पाप-संचय के कारण इस सिद्धान्त में कतिपय मनुष्यों को संशय रहता

है। गीता में भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी ने श्रीमुख से संशय को ही अधोगति का कारण बतलाया है (संशयात्मा विनश्यति)। "विना ज्ञान के मुक्ति नहीं होती" केवल इसी बातको सुनकर उनको संदेह होता है; किन्तु इसमें जो रहस्य है उसकी ओर ध्यान नहीं दिया जाता। ज्ञान के विना मुक्ति का होना असम्भव है ही पर परम कल्याणकारी काशीपुरी में शरीर त्यागनेवाले प्रत्येक जीव को अत्यन्त कारुणिक आशुतोष भगवान् शंकर के तारकमंत्र के उपदेश द्वारा स्वतः ही तुरन्त ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है और वे पुण्यात्मा कैवल्यपद के भागी होकर परमानन्द का अनुभव करते हैं। अन्त में मेरी यही आशा है कि पाठक इसके एक एक अमूल्य अक्षर का मनन करेंगे और मुझे आशीर्वाद देंगे कि भगवान् शंकर के चरणारविन्दों में मेरा प्रेम दिन दिन अधिक हो।

—आपका गौरीशंकर गनेड़ीवाला।

काशीनाममहिमा ।

काशीतिवर्णद्वितयं स्मरंस्त्यजति पुद्गलम् ।
यत्र क्वापि भवेत्तस्य कैलासे वसतिः स्फुटा ॥
काशी काशीति काशीति रसज्ञा रससंयुता ।
यस्य कस्यापि भूयश्चेत्स रसज्ञो न चेतरः ॥
तावद्गर्जन्ति पापानि ब्रह्महत्यादिका न्यलम् ।
यावन्नाम न गृह्णन्ति काश्याः पापाश्चलाशने ॥
ब्रह्महत्यादिपापानि यस्या नाम्नोऽपि कीर्तनात् ।
त्यजन्ति पापिनं काशी सा केनेहोपमीयते ॥
वाराणसीति काशीति महामंत्रमिमं जपन् ।
यावज्जीवं त्रिसन्ध्यन्तु जन्तुर्जातु न जायते ॥
तत्क्षेत्रनामस्मरणान्न स भूयोभिजायते ।
यस्तु काशीति काशीति द्वित्रिर्जपति पुण्यवान् ॥
अपि सर्वपवित्रेभ्यः स पवित्रतरो महान् ।
वाराणसीति काशीति रुद्रावास इति स्फुटम् ॥
मुखाद्विनिर्गतं येषां न तेषां प्रभवेद्यमः ।
येन बीजाक्षरयुतं काशीति हृदि धारितम् ॥

॥ भजन ॥

हे काशिनाथ कृपालु कृपा यह कीजै ।
निज विमल भक्तिका ज्ञान हृदय में दीजै ॥
मैं श्वास श्वास शिव रटूँ अनत नहीं जाऊँ ।
ले ले कर अनुपम नाम सुयश नित गाऊँ ॥
हे चन्द्रचूड ! जगदीश ! शम्भु ! अविनाशी !
हे भक्तप्रिय भगवान सदा सुखराशी ॥
अब करदो बेड़ा पार अरज यह मेरी ।
चितदे चितवहु सरकार कमल मुख फेरी ॥

श्रीः गणेशाय नमः

श्रीजगद्गुरु सुरेश्वराचार्य कृत

काशीमोक्ष-निर्णय

नमस्कृत्य जगन्नाथं मायया चन्द्रशेखरम् ।
गङ्गाधरं गरच्छायानीलकण्ठमुपास्महे ॥

अपने विशाल भाल में चन्द्रमा को धारण करनेवाले जटाजूट में जगत्पावनी श्री गङ्गाजी को स्थान देनेवाले समुद्र के मन्थन से उत्पन्न विष के पान करने से नीले गलेवाले सचराचर जगत् की लीलामात्र से रक्षा करनेवाले भगवान् शङ्कर को नमस्कार कर उनकी उपासना करता हूँ ।

वाराणसीं पुरीं पुण्यां येऽधितिष्ठन्ति जन्तवः ।
व्याचष्टे तारकं ब्रह्म रुद्रस्तेषां दयानिधिः ॥

परम पवित्र काशीपुरी में जो जीव निवास करते हैं उन्हें

परम कारुणिक भगवान् महेश्वर मरने के समय तारक मंत्र का उपदेश देते हैं।

प्राणप्रयाणसमये प्राप्य ज्ञानं महेश्वरात् ।
मुच्यन्त जन्तवः सर्वे बद्धाः स्वाभाव्यविद्यया ॥

प्राण छूटते समय दयानिधि शङ्कर देव से तारक मंत्र द्वारा ज्ञान प्राप्त करके अपनी स्वाभाविक अविद्या से बँधे हुए भी जीव मुक्त हो जाते हैं।

* मोक्षश्च तेषां तादात्म्यं घटेतरखयोरिव ।
पुनर्देहान्तरारम्भे कारणं नास्ति किञ्चन ॥

जिस प्रकार घटाकाश और महाकाश में आधार के नष्ट हो जाने पर कोई भेद नहीं रहता और दोनों आकाश एक हो जाते हैं उसी तरह काशी में अपने आधार शरीर का परित्याग करनेवाला जीवात्मा परब्रह्म परमात्मा के साथ तादात्म्य प्राप्त कर लेता है अर्थात् परमात्मा के साथ एक हो जाता है और तदनन्तर देहारम्भ में किसी कारण के न होने के कारण उस

---

* मोक्ष चार प्रकार के होते हैं —सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य। इन चारों प्रकार के मोक्षों में सायुज्य, जिसका दूसरा नाम तादात्म्य है, सबसे उत्तम माना गया है। इस मोक्ष में परमात्मा के साथ ऐक्य हो जाता है। इन चारों मोक्षों के लक्षण परिशिष्ट १ में दिए गए हैं।

मुक्त जीव को फिर देह धारण कर इस संसार के सुख-दुःखों का अनुभव नहीं करना पड़ता। विद्वान् लोग सालोक्य, सामीप्य, और सारूप्य मोक्ष को साक्षात् मोक्ष नहीं कहते अर्थात् सायुज्य (तादात्म्य) मोक्ष का जितना महत्त्व है उतना महत्त्व सालोक्य, सामीप्य या सारूप्य को नहीं देते।

प्रारब्धं कर्म भोगेन क्षीयते ज्ञानकारणम्।
ततो विदेहकैवल्यं भवतीति सुनिश्चितम्॥

प्रारब्ध कर्मों का क्षय भोग से ही होता है। जब तक उन कर्मों का भोग जीव को मिल नहीं जाता तब तक वे बने ही रहते हैं। भोग के अनन्तर ही उनका क्षय होता है। जीवन्मुक्त भी उन प्रारब्ध कर्मों के द्वारा प्रेरित होकर कर्मों के भोग की समाप्ति पर्यन्त शरीर धारण किए रहता है और भिन्न भिन्न कर्म किया करता है। जब वे सब प्रारब्ध कर्म समाप्त हो जाते हैं तब उसे विदेह कैवल्य अवश्य ही मिल जाता है। कर्म तीन प्रकार के होते हैं—आगामि, संचित और प्रारब्ध।

१ आगामिः—इसी का दूसरा नाम क्रियमाण कर्म है। जीव एक बार शरीर धारण कर जिन कर्मों को अपने जीवन काल में करता है उन्हीं का नाम क्रियमाण कर्म है। ये कर्म यदि बहुत होते हैं तो उसी जन्म में फल दे देते हैं अन्यथा सञ्चित होकर

जन्म-जन्मान्तर में अपना फल दिखाते हैं ‡; परन्तु ज्ञान की उत्पत्ति हो जाने पर ज्ञानी के शरीर के द्वारा किए गए पाप कर्म और पुण्य कर्म किसी प्रकार का फल नहीं देते। कमल के पत्ते पर जिस प्रकार जल का संसर्ग नहीं होने पाता उसी प्रकार ज्ञानी के ऊपर इनका असर नहीं होता। अच्छे कर्म तो उन भक्तों के पास चले जाते हैं जो उस ज्ञानी की उपासना करते हैं अथवा पूजा करते हैं अथवा स्तुति करते हैं और बुरे कर्म ज्ञानी की निन्दा करनेवाले अथवा उसे दुःख देनेवाले के पास चले जाते हैं।

* संचित कर्मः—अनेकों करोड़ जन्मों में किए गए अनेक प्रकार के पुण्य कर्म और पाप कर्म एकत्रित होते जाते हैं। ये सब कर्म बीज रूप से वर्तमान रहते हैं। इन्हीं का नाम संचित कर्म है।

---

‡ ज्ञानोत्पत्यनन्तरं ज्ञानिदेहकृतं पुण्यपापरूपं कर्म यदस्ति तदागामीत्यभिधीयते। आगामि कर्म ज्ञानेन नश्यति। किञ्च आगामिकर्मणां नलिनीदलगतजलवत् ज्ञानिनां संबन्धो नास्ति। किञ्च ये ज्ञानिनं स्तुवन्ति, भजन्ति, अर्चयन्ति तान् प्रति ज्ञानिकृतम् आगामि पुण्यं गच्छति। ये ज्ञानिनं निन्दन्ति द्विषन्ति, दुःखप्रदानं कुर्वन्ति तान् प्रति ज्ञानिकृतं सर्वम् आगामि क्रियमाणं यदवाच्यं कर्म पापात्मकं तद् गच्छति। [तत्त्वबोधे]

* अनन्तकोटिजन्मनां बीजभूतं सत् यत्कर्मजातं पूर्वार्जितं तिष्ठति तद् सञ्चितं ज्ञेयम्। सञ्चितं कर्म "ब्रह्मैवाहम्" इति निश्चयात्मकज्ञानेन नश्यति। [तत्त्वबोधे]

इनका नाश तभी होता है जब जीव को यह ज्ञान हो जाता है कि मैं ही ब्रह्म हूँ।

* प्रारब्ध कर्मः—जगन्नियन्ता परमेश्वर इन्हीं कर्मों में से कुछ पुण्य कर्म और कुछ पाप कर्म देकर जीव को संसार में भेजता है और उन्हीं कर्मों का फल जीव अपने उस जीवनकाल में भोगता है और तदनुसार अनेक प्रकार के सुखों और दुःखों को भोगता है। इन कर्मों का क्षय केवल भोग से ही हो सकता है और किसी प्रकार से नहीं। यहाँ तक कि जीवन्मुक्त पुरुष को भी ये कर्म भोगने ही पड़ते हैं।

उपास्तेः पररूपत्वात् तारतम्यपदस्थितेः।
ज्ञानाग्निना विनष्टत्वात् विश्लेषः पूर्वकर्मणाम् ॥५॥

मोक्ष के मुख्य तीन साधन हैं ज्ञान, कर्म और उपासना इन तीनों में उपासना का सबसे प्रथम स्थान है। यह सबसे उत्तम साधन है। ज्ञानरूपी अग्नि में सभी सञ्चित कर्म जल जाते हैं और उनमें फल लाने की शक्ति नहीं रह जाती। इसी कारण जीव के साथ उन कर्मों का कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता; जीव एक दम असंग हो जाता है।

---

* इदं शरीरमुत्पाद्य इह लोके एवं सुखदुःखादिप्रदं यत् कर्म तत् प्रारब्धम् भोगेन नष्टं भवति "प्रारब्धकर्मणां भोगादेव क्षयः" इति।

[तत्त्वबोधे]

काश्यां विदेहकैवल्यं भवतीति सुनिश्चितम् ॥ ७ ॥
काश्यां विदेहकैवल्यप्राप्तेरुत्तरकर्मणाम् ।
असंभवान्न विश्लेषो वेदितव्यो विचक्षणैः ॥ ८ ॥

काशीपुरी में शरीर का परित्याग करने से तारक मन्त्र के बल से विदेह कैवल्य अवश्य ही हो जाता है इसमें कोई सन्देह नहीं। काशी में मरने पर जब विदेह कैवल्य की प्राप्ति हो जाती है तब क्रियमाण और करिष्यमाण कर्मों का असर ब्रह्मीभूत जीव के ऊपर नहीं पड़ता। उन कर्मों से यह असङ्ग ही रहता है।

किमत्र प्रमाणम् ?

इस उपरोक्त सिद्धान्त में प्रमाण क्या है ?

श्रूयते हि यथेषीकातूलमग्नौ प्रोतं प्रदूयेत एवं हास्य सर्वे पाप्मानः प्रदूयन्ते इति, (छा० उ० ५.२४.३.)

जिस प्रकार मूँज के फूल की रूई आग के स्पर्शमात्र से भस्म हो जाती है इसी प्रकार ज्ञानरूपी अग्नि के उत्पन्न होते ही जीव के सभी संचित पाप कर्म क्षण भर में जल कर भस्म हो जाते हैं।

तर्हि पापकर्मणामेव विलयः श्रूयते न पुण्यकर्मणामिति चेत् न इत्याह :—

छान्दोग्य उपनिषद् की इस श्रुति में पाप्मानः शब्द के प्रयोग से

जान पड़ता है कि ज्ञानरूपी अग्नि से पाप कर्मों का ही क्षय होता है पुण्य कर्मों का नहीं होता यह आशङ्का उचित नहीं है क्योंकि—

ब्रह्मादीनां शरीराणि श्वशूकरशरीरवत् ।
यतो जिहासितान्येव तस्मात् धर्मेऽपि पाप्मगीः ॥

ब्रह्मादि के शरीर उसी प्रकार परित्याग करने के योग्य होते हैं जिस प्रकार कि कुत्ते और सुअर के शरीर । इसी तरह पाप कर्मों के कथन से पुण्य कर्मों का भी बोध होता है। अर्थात् ज्ञान रूपी अग्नि पाप कर्म और पुण्य कर्म सबों को जला डालती है ।

इति वचनात् पुण्यकर्मारब्धानां ब्रह्मेन्द्रशरीराणां पाप-कर्मारब्धश्वशूकरशरीरादिवज्जिहासितत्वाविशेषात् पुण्य-स्यापि कर्मणः पाप्मत्वेन कीर्तनं युक्तम् । तथा च भगवता स्मर्यते:—

इस पूर्वोक्त वचन से जिस प्रकार पुण्य कर्मों के द्वारा प्राप्त किए गए ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवताओं के शरीर पाप कर्मों के द्वारा पाए गए कूकर–सूकर के निन्दनीय शरीर के बराबर ही त्याज्य हैं उसी प्रकार पुण्य कर्म भी फल देनेवाले होने के कारण बन्धन में डालनेवाले हैं और अतएव पाप कर्मों के समान ही कहे गए हैं। इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन भगवान् श्रीकृष्णजी ने श्रीमद्भगवद्गीता में किया है:—

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन ।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते तथा ॥४. ३७॥

हे अर्जुन ! धग् धग् जलती हुई आग जिस प्रकार ईंधन को जला कर राख कर डालती है, उसी प्रकार ज्ञानरूपी अग्नि सभी पाप और पुण्य कर्मों को जला डालती है और जीव को उन कर्मों के बन्धन से मुक्त कर देती है ।

यच्चोक्तं जीवन्मुक्तस्य ज्ञानोत्तरकालीनकर्मणां विश्लेषो न भवतीति तत्रेदं प्रमाणम्ः—

पहिले कह चुके हैं कि जीवन्मुक्त अवस्था में ज्ञान प्राप्त होने के पीछे किए गए कर्मों का असर नहीं होता इस कथन में नीचे दी गई श्रुति प्रमाण हैः—

यथा पुष्करपलाश आपो न श्लिष्यन्ते । एवं हैवं-विदि पापं कर्म न श्लिष्यते इति ।

[छा० उ० ४।१४ ३]

जिस प्रकार कमल के पत्ते में जल का संसर्ग नहीं होता उसी प्रकार तत्वज्ञानी को पाप कर्मों का फल नहीं होता । पाप कर्म अथवा पुण्य कर्म करने के कारण उसे बन्धन में नहीं पड़ना पड़ता ।

प्रारब्धस्य च कर्मणः कर्मत्वाविशेषात् ज्ञानेन बाध्यत्व-

मुत्पद्यते·इति चेत् न इत्याह—

अब यह प्रश्न उठता है कि संचित कर्म और प्रारब्ध कर्म ये दोनों प्रकार के कर्म कर्म ही के नाम से प्रसिद्ध हैं अर्थात् कर्म कहने से प्रारब्ध एवं संचित इन दोनों प्रकार के कर्मों का ज्ञान होता है तो ज्ञानरूपी अग्नि से जिस प्रकार संचित कर्म क्षीण हो जाते हैं उसी तरह प्रारब्ध कर्मों का नाश भी क्यों नहीं हो जाता? श्रुति में तो केवल कर्म शब्द कहा गया है। इस शङ्का का समाधान नीचे दिए गए वचन से किया गया है:—

प्रारब्धस्योपजीव्यत्वात् तत्वज्ञानेन कर्मणः।
अशक्यत्वाच्च मुक्तेषोरिव बाधो न विद्यते॥

जीव को मोक्ष तभी मिलता है जब कि उसके प्रारब्ध कर्म उसमें सहायक होते हैं अर्थात् प्रारब्ध कर्मों ही के अनुसार जीव का आवागमन संसार में होता है। जब प्रारब्ध कर्म अपना फल देना प्रारम्भ कर देते हैं तो जब तक वे समाप्त नहीं हो जाते अपना फल देते रहते हैं। जिस प्रकार तीर जब धनुष से छूट जाता है तब वह अपना काम करके ही रुकता है, बीच में नहीं। इसी प्रकार प्रारब्ध कर्म भी अपना काम करके ही समाप्त होते हैं, बीच में उनको कोई नहीं रोक सकता।

अथेदानीं परमप्रकृतेः प्रमाणं प्रतिपद्यते।

अब परम प्रकृति परमात्मा ही सबका आदि कारण है और वही सबमें प्रधान है इसका प्रमाण आगे की पंक्तियों में दिया जाता है:—

यमो वैवस्वतो राजा यस्तवैष हृदि स्थितः।
तेन चेदविवादस्ते मा गङ्गां मा कुरून् गमः॥

[मनुस्मृति ८. ६८]

तुम्हारे हृदय में बैठे हुए वैवस्वत राजा यम के साथ यदि तुम्हारा ऐक्य है तो तुम न तो गंगा नहाने जाओ और न कुरुक्षेत्र की यात्रा करने जाओ।

इति गंगाकुरुक्षेत्रयोः निषेधमुखतो मुमुक्षुप्राप्यत्वमाह स्म भगवान् आचार्यो मनुः।

इस प्रकार भगवान् आचार्य मनु ने गंगा और कुरुक्षेत्र के सेवन की का निषेध कहते हुए मोक्ष चाहनेवाले को परब्रह्म के साथ तादात्म्य प्राप्त हो सकता है यह सिद्ध किया है।

(अब उपर्युक्त श्लोक के हर एक शब्द का अर्थ करते हैं)

यमः = यमयति = नियमयति तथा च श्रुतिः—

उस ईश्वर का नाम यम इस लिए पड़ा कि वह समस्त संसार का नियमन करता है। उसी के बनाए हुए नियमों से संसार का

संचालन होता है। इसमें आगे दी गई श्रुति प्रमाण है—

य आत्मनि तिष्ठन्नात्मनोऽन्तरो यमात्मा न वेद यस्य आत्मा शरीरं य आत्मानमन्तरो यमयति एष त आत्मा अन्तर्याम्यमृतः ॥ ३, ७, ॥

[बृहदारण्यकोपनिषत्]

महर्षि याज्ञवल्क्य अरुण के पुत्र उद्दालक से कहते हैं कि—जो आत्मा में वर्तमान है, जो आत्मा के भीतर निवास करता है, जिसे आत्मा अपने में स्थित नहीं जानता, जिसका शरीर आत्मा है, जो आत्मा के भीतर रह कर उसे अपने व्यापार में लगाता है और उसके ऊपर शासन करता है वही संसार के सब धर्मों से रहित अन्तर्यामी जगन्नियन्ता परमेश्वर ही तुम्हारी आत्मा है।

वैवस्वतः—विवस्वान् पिता अस्येति—विवस्वन्तमधितिष्ठतीत्यर्थः।

विवस्वान् अर्थात् सूर्य के पुत्र। इसका तात्पर्य यह कि सूर्य में व्याप्त होकर रहनेवाले।

राजा = राजते=दीप्यते=स्वयं प्रकाशते।

राजा उसे कहते हैं जो स्वयं प्रकाशमान हो जिसे प्रकाशित करने के लिए दूसरे प्रकाश की आवश्यकता न पड़े। ईश्वर स्वयं प्रकाशमान है जैसा कि इस वचन से ज्ञात होता है:—

ज्योतिर्वाह्यमाकयोक्तं ज्योतिष्टुं प्रत्यगात्मनः।

औपचारिकमन्यत्र भास्यत्वाद्ध भास्वदादिवत् ॥

ज्योतिर्ब्राह्मण में कहा गया है कि यथार्थ ज्योति अर्थात् स्वाभाविक प्रकाश तो केवल आत्मा में ही है। आत्मा के अतिरिक्त और कोई भी पदार्थ संसार में स्वयं प्रकाशमान नहीं है। अग्नि, सूर्य, चन्द्र आदि में जो तेज दिखाई देता है वह स्वाभाविक नहीं किन्तु उसी परम प्रकाशमान परमात्मा के सम्पर्क से प्राप्त होता है।

"यस्तवैष हृदि स्थितः" इति स्वानुभवप्रत्ययत्वं दर्शयति ।

"जो ईश्वर तुम्हारे हृदय में बैठा हुआ है" इस वचन से भगवान् मनु यह दिखलाते हैं कि इस विषय में गुरु, वेदान्त आदि के वाक्यों पर विश्वास करने की आवश्यकता ही नहीं, इसका अनुभव तो स्वयं किया जा सकता है।

"हृदि स्थितः" इति सर्वेषां भूतानां हृद्देशे सदा सन्निहितः ।

हृदय में स्थित का अर्थ यह है कि वह अन्तर्यामी भगवान् प्राणिमात्र के हृदय में सर्वदा वर्तमान रहता है। ऐसा कोई भी प्राणी नहीं जिसके हृदय में ईश्वर न बैठा हो। इसमें श्रुति और स्मृति दोनों प्रमाण हैं—

"अन्तः प्रविष्टः शास्ता जनानाम्" इति श्रुतेः ।

[तै० आ० ३. ११. १–२]

श्रुति का वचन है कि ईश्वर सब जीवों के हृदय में बैठा हुआ शासन करता है।

"शास्ता विष्णुरशेषस्य जगतो यो हृदि स्थितः" इति स्मृतेः।

स्मृति का वचन है कि भगवान् विष्णु अर्थात् ईश्वर जो कि सम्पूर्ण जगत् के हृदय में विराजमान हैं संसार भर के नियासक हैं।

ते=तव यो हृदि स्थितस्तेन परमात्मना अविवादः= ऐकात्म्यं यदास्ति तदा गङ्गां कुरुक्षेत्रं च मा गाः।

संसार भर के नियामक स्वयं प्रकाशमान और तुम्हारे हृदय में बैठे हुए ईश्वर के साथ यदि तुम्हारा ऐकात्म्य है तो तुम्हें गंगा और कुरुक्षेत्र जाने की आवश्यकता नहीं।

गङ्गायां मरणं चैव दृढा भक्तिश्च केशवे।
ब्रह्मविद्याप्रबोधश्च नाल्पस्य तपसः फलम्॥

परमपावनी गंगाजी के तट पर शरीर का छूटना, भगवान् विष्णु में अचल भक्ति का होना और ब्रह्मविद्या का जान लेना यह साधारण तप का फल नहीं, बहुत कठिन तप करने पर इनकी प्राप्ति होती है।

इति समप्रधानभावेन श्रीव्यासेनोक्तम्।

इस प्रकार भगवान् व्यास ने गंगा के तट पर शरीर परित्याग, विष्णु में अटल भक्ति एवं ब्रह्मविद्या ज्ञान को समान महत्व दिया है और संसार के बन्धनों से मुक्त करनेवाले सब सुकर्मों में इन्हें प्रधान स्थान दिया है। और भी कहा गया है कि—

मरणे स्मरणं विष्णोः कथ्यतेऽत्यन्तदुर्लभम् ।
तदल्पेनैव कालेन गङ्गां संसेव्य लभ्यते ॥

मरने के समय विष्णु का स्मरण, जिससे कि मनुष्य भव-बाधा से छूट जाता है, परम दुर्लभ बताया गया है। परन्तु थोड़े काल तक भी गंगा का सेवन कर लेने से मरण काल में भगवान् का स्मरण हो आता है और उसके द्वारा मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है।

यस्य तत्वज्ञानं नास्ति तस्य गङ्गायां कुरुक्षेत्रे वा यावद्देहावसानं तावत् स्थितौ सत्यां तत्वज्ञानावाप्तौ मोक्षो भवतीति भावः।

तात्पर्य यह है कि जिसे तत्वज्ञान की प्राप्ति हो चुकी उसे तो गंगा, कुरुक्षेत्र आदि के सेवन की आवश्यकता नहीं परन्तु जिसे तत्वज्ञान की प्राप्ति नहीं हुई उसे मरण पर्यन्त गंगा के तट पर या कुरुक्षेत्र में निवास करने से अन्त में तत्वज्ञान की प्राप्ति हो जाती है और उसका मोक्ष हो जाता है।

किं नाम तत् कुरुक्षेत्रं यत्र देहावसाने सर्वस्य जन्तोः मोक्षः श्रूयते ?

कुरुक्षेत्र का महत्व जानकर प्रश्न होता है कि वह कुरुक्षेत्र कौन सा ऐसा उत्तम स्थान है जिसमें शरीर परित्याग करने के अनन्तर जीव मात्र को मुक्ति अनायास प्राप्त हो जाती है। इसी प्रश्न का समाधान बृहस्पति और याज्ञवल्क्य के संवाद से किया जाता है।

बृहस्पतिरुवाच याज्ञवल्क्यं यदनु कुरुक्षेत्रं देवानां देवयजनं सर्वेषां भूतानां ब्रह्मसदनम्। अविमुक्तं वै कुरुक्षेत्रं देवानां देवयजनं सर्वेषां भूतानां ब्रह्मसदनम्। तस्माद्य यत्रक्वचन गच्छति तदेव मन्येत तदविमुक्तमेव। इदं वै कुरुक्षेत्रं देवानां देवयजनं सर्वेषां भूतानां ब्रह्मसदनम्। अत्र हि जन्तोः प्राणेषूत्क्रममाणेषु रुद्रस्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे येनासावमृतीभूत्वा मोक्षीभवति तस्मादविमुक्तमेव निषेवेत अविमुक्तं न विमुञ्चेदेवमेवैतद्याज्ञवल्क्य ॥ १ ॥

[जाबालोपनिषत् १]

बृहस्पतिर्याज्ञवल्क्यं पप्रच्छ वद नः कुरुक्षेत्रम् देवानां देवयजनं सर्वेषां भूतानां ब्रह्मसदनम्। तस्माद्य यत्रक्वचन गच्छतीति।

बृहस्पति ने महर्षि याज्ञवल्क्य से पूछा कि मुझे कुरुक्षेत्र के विषय में बताओ जो कि सब देवों के पूजन का स्थान है और सब प्राणियों के लिए ब्रह्मलोक के समान है और जहाँ से मोक्ष के लिए दूसरी जगह जाना उचित नहीं है।

विश्वेश्वरेण कदाचिदपि मुक्तं न भवतीत्यविमुक्तम्। सर्वगतत्वेऽपि विशेषाभिव्यक्तिहेतोः। वै एवार्थः।

विश्वेश्वर इस क्षेत्र को त्याग कर कभी कहीं नहीं जाते इस लिए इसका नाम अविमुक्त है। यद्यपि सम्पूर्ण संसार में विश्वेश्वर व्याप्त हैं तथापि इस पुण्यक्षेत्र में वे विशेष रूप से निवास करते हैं और उनकी सत्ता इस क्षेत्र में प्रकट रूप से जान पड़ती है। इस श्रुति में "वै" शब्द का प्रयोग करके बता दिया गया है कि यहां तो वे अवश्य ही प्रत्यक्ष रूप से वर्तमान हैं।

कुरुक्षेत्रम् = कुरुक्षेत्रशब्दितम्।

इस पुण्यतीर्थ का नाम जिसमें कि भगवान् विश्वेश्वर का सदा निवास रहता है कुरुक्षेत्र है।

देवानां देवयजनम् = सर्वे देवा इज्यन्त इति। सर्वे देवा यत्र विश्वेश्वरं यजन्ति = पूजयन्ति वेति देवयजनम्।

'देवयजनम्' इस शब्द के दो अर्थ हो सकते हैं—एक तो यह कि जहाँ सब देवताओं की पूजा होती हो। इसका

कारण यह है कि इस पावन अविमुक्त क्षेत्र में सभी देवियां और सभी देवता अपने कुछ अंशों से निवास करते हैं। अतः सभी देवों की इस तीर्थ में पूजा होती है। दूसरा अर्थ यह है कि इस तीर्थ में सभी देवता निवास करके श्रीविश्वेश्वर भगवान् की पूजा और आराधना करते हैं।

सर्वेषां भूतानां ब्रह्मसदनम् भवन्तीति भूतानि (भवन्ति = उत्पद्यन्ते)। उत्पत्तिमन्ति कानि तानि? जरायुजाण्डजस्वेद-जोद्भिज्जानि। तेषां सर्वेषां भूतानां ब्रह्मसदनम् = ब्रह्मलोकः।

समस्त भूतमात्र के लिए यह अविमुक्त क्षेत्र ब्रह्मलोक के समान है। संसार में जितने उत्पन्न होनेवाले स्थावर-जंगम पदार्थ हैं वे सब भूत कहलाते हैं। ये उत्पन्न होनेवाले पदार्थ चार प्रकार के होते हैं—जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज।

मनुष्य, पशु आदि जीव जरायुज कहलाते हैं क्योंकि गर्भावस्था में इन जीवों का पाञ्चभौतिक शरीर एक चमड़े के थैले में, जिसे कि जरायु कहते हैं, लिपटा रहता है। पक्षी, सर्प आदि जीव अण्डज होते हैं क्योंकि उनकी उत्पत्ति अण्डों से होती है। स्वेदज वे होते हैं जो कि पसीने से उत्पन्न होते हैं जैसे खटमल, जुआँ, लीख आदि छोटे छोटे कीड़े। उद्भिज्ज वे कहे जाते हैं जो कि भूमि को भेद कर उत्पन्न होते हैं जैसे वृक्ष, पौधे, घास आदि। इन

चारों प्रकार के भूतों के लिए यह पवित्र अविमुक्त क्षेत्र साक्षात् ब्रह्मलोक है।

तस्मात् = अविमुक्ताद्व यत्रकचन गच्छति = यत्र क्वापि न गच्छेत् मोक्षार्थम् क्षेत्रान्तरम्। ["व्यत्ययो बहुलम्" इति लकारव्यत्ययः।] अविमुक्तं परित्यज्य क्षेत्रान्तरे मोक्षो न भवतीति भावः।

ऐसे उत्तम अविमुक्त क्षेत्र से मोक्ष की प्राप्ति के लिए किसी भी दूसरे क्षेत्र में नहीं जाना चाहिए। (श्रुति में दिए गए 'गच्छति' शब्द का अर्थ वर्तमान काल में होने के कारण यद्यपि "जाता है" यह होना चाहिए परन्तु वैदिक मन्त्रों में यह नियम है कि कहीं कहीं दूसरे काल में दूसरे काल का प्रयोग हो जाता है इस लिए यहां वर्तमान काल का अर्थ न करके विधि का अर्थ 'जावे' या 'जाना चाहिए' यह किया गया।

इस आधे मंत्र का संक्षेप में अर्थ यही है कि इस परम पावन

साक्षात् मोक्षो न चैतासु पुरीषु प्रियभाषिणि।

(का० खं० ८-३)

अगस्त्यजी कहते हैं कि हे लोपामुद्रे! अयोध्या मथुरा हरिद्वार आदि सात मुक्ति पुरियां हैं पर यहां मरने से साक्षात् मोक्ष नहीं होता। दूसरा जन्म लेकर काशी में मृत्यु मिलती है और तब मोक्ष होता।

अविमुक्त क्षेत्र को त्यागकर मोक्ष के लिए कहीं नहीं जाना चाहिए क्योंकि दूसरे क्षेत्र में मोक्ष होता ही नहीं।

तदिदं मन्ये देवानां देवसदनम् सर्वेषां भूतानां ब्रह्मसदनम्। तत् = तस्माद्देवानां देवयजनमिदमविमुक्तं सर्वेषां भूतानां ब्रह्मसदनं = ब्रह्मलोकं मन्ये।

इस कारण विद्वान् लोग इस अविमुक्त क्षेत्र को देवों का पूजास्थान एवं स्थावर-जंगम भूतों का ब्रह्मलोक समझते हैं।

अत्र हि जन्तोः प्राणेरुत्क्रममाणस्य रुद्रस्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे। अत्र = अविमुक्तं, हि = प्रसिद्धौ, जन्तोः = चतुर्विधस्य जीवजातस्य, प्राणैरुत्क्रममाणस्य = प्राणैरुत्क्रान्ति कुर्वतः ('प्राणेषूत्क्रममाणेषु' इति केचित् पठन्ति)

इस अविमुक्त क्षेत्र में शरीर परित्याग कर प्राणों के द्वारा ऊपर की ओर जाते हुए चारों प्रकार के जीवों को भगवान् रुद्र तारक मंत्र का उपदेश देते हैं। कुछ लोग "प्राणेषु उत्क्रममाणेषु" ऐसा पाठ-भेद बताते हैं उनके मत के अनुसार यह अर्थ होगा कि 'प्राण छूटने के समय' परन्तु इन दोनों पाठों में कुछ विशेष भेद नहीं।

रुद्र शब्द की कई प्रकार से व्याख्या की गई है:—

(१) रुद्रः—तापत्रयात्मकं संसारदुःखं = रुत्, दुःखहेतुर्वा = रुत्। रुदं द्रावयतीति = रुद्रः।

संसार में तीन प्रकार के दुःख होते हैं—आध्यात्मिक१ आधिभौतिक२ और आधिदैविक३। इन्हीं सांसारिक *दुःखों का नाम 'रुत्' है। कुछ लोगों का कथन है कि रुत् का अर्थ दुःख नहीं किन्तु दुःख का हेतु है। इसी रुत् को जो दूर करते हों उन्हें 'रुद्र' कहते हैं। इस व्याख्या में स्मृति के दो वचन प्रमाण हैं:—

रुद्दु दुःखं दुःखहेतुर्वा, द्रावयत्येष नः प्रभुः।
रुद्र इत्युच्यते सद्भिः शिवः परमकारणम् ॥

दुःख अथवा दुःख के कारण को रुत् कहते हैं। हम लोगों

---

* दुःख तीन प्रकार के होते हैं—१ आध्यात्मिक, २ आधिभौतिक और ३ आधिदैविक।

१ आध्यात्मिक दुःख के दो भेद हैं—(क) शारीरिक और (ख) मानसिक। वात, पित्त एवं कफ में विषमता होने के कारण ज्वर, अतीसार आदि का नाम शारीरिक दुःख है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, ईर्ष्या, विषाद आदि के कारण मानसिक दुःख होता है।

२ मनुष्य, पशु, पक्षी, सर्प आदि जंगम जीवों से तथा विष, वृक्ष आदि स्थावर वस्तुओं से जो दुःख होता है उसे आधिभौतिक दुःख कहते हैं।

(३) यक्ष, राक्षस, भूत, प्रेत आदि के आक्रमण से तथा सूर्य्य, चन्द्र, आदि ग्रहों के आवेश से जो दुःख होता है उसे आधिदैविक दुःख कहते हैं।

के उस रुत् को ये भगवान् शिव दूर करते हैं। इसलिए सज्जन विद्वान् लोग आदि कारण भगवान् शिव को रुद्र कहते हैं।

और भी—

अशुभं द्रावयन् रुद्रो यज्जहार पुनर्भवम्।
ततः स्मृताभिधौ रुद्रशब्देनात्राभिधीयते॥

जीवनकाल में प्राणी के सब अशुभों को दूर करते हैं और शरीर परित्याग करने पर मोक्ष देते हैं इसी लिए भगवान् शिव का नाम रुद्र है।

(२) रुत्या = वेदरूपया धर्मादीन् बोधयति वा रुद्रः।

वेद की ध्वनि द्वारा जो धर्मादिकों का बोध करावें वे ही रुद्र हैं।

(३) रुत्या = प्रणवरूपया स्वात्मानं प्रापयतीति वा रुद्रः।

प्रणव अर्थात् ओंकार के गान के द्वारा जो अपने समीप तक जीव को पहुँचा दें वे ही रुद्र हैं।

(४) रोरूयमाणो द्रवति = प्रविशति मर्त्यानिति वा रुद्रः। (ऋ० वे० ३।८।१०।२)

जो घोर शब्द करते हुए मनुष्यों में प्रवेश करते हैं उन्हीं का नाम रुद्र है।

(५) रोधिका बंधिका च शक्तिः=रुत् । तस्याः द्रावयिता भक्तेभ्य इति वा विग्रहः ।

रोधिका और बंधिका ये दो प्रकार की शक्तियां होती हैं। रोधिका मोक्ष के मार्ग में आवरण (परदा) डाल देती है और इस आवरण के कारण मोक्ष का मार्ग ही नहीं दिखाई देता। दूसरी वन्धिका मोक्ष में विक्षेप डाल देती है और इस विक्षेप के कारण मोक्ष मिलना कठिन हो जाता है। मोक्ष में बाधा डालने वाली इन दोनों प्रकार की शक्तियों को भक्तों से दूर कर देनेवाले को रुद्र कहते हैं।

(६) रुत् शब्दं वेदात्मानं कल्पादौ ब्रह्मणे ददातीति वा रुद्रः ।

सृष्टि के आदि में ब्रह्मा को वेदरूपी शब्द देनेवाले को रुद्र कहते हैं। इसमें श्रुति प्रमाण है :—

*'यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै' इति श्रुतेः ।

(श्वेता० ६-१८)

जो भगवान् परमात्मा ब्रह्माजी को वेद देते हैं। भगवान् रुद्र

---

* यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै। तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ॥

श्वेताश्वतरोपनिषद् ६-१८

ब्रह्मा की सृष्टि कर उन्हें वेद देते हैं।

एवमादिभिः प्रकारैः वहुधा रुद्रशब्दो निरूप्यते।

ऊपर कहे गए भिन्न भिन्न प्रकारों से रुद्र शब्द की व्याख्या कई प्रकार की जाती है।

तारकम् तारकः = प्रणवः। तारयतीति तारः (स्वार्थे कः प्रत्ययः) संसारसागरादुत्तारकं = तारकं च तद्ब्रह्म इति तारकं ब्रह्म उच्यते।

ओंकार तारक है क्योंकि जो डूबते हुए का उद्धार करके उसे तार दे उसी को तारक कहते हैं। (तारक शब्द में 'तार' शब्द से स्वार्थ में क प्रत्यय हुआ है अर्थात् जो अर्थ तार शब्द का है वही अर्थ तारक शब्द का है)। अपार संसार सागर से तार देने वाले तारक ब्रह्म का उपदेश भगवान् रुद्र करते हैं। प्रणव अर्थात् ओंकार को ही विद्वान् लोग तारक ब्रह्म कहते हैं, इसमें अनेक वेद-वाक्य प्रमाण हैं।

"ओमितीदं ब्रह्म" इति श्रुतेः। (तै० उ० १।८)

ओंकार ही ब्रह्म है अर्थात् ओंकार और ब्रह्म में कोई भेद नहीं।

"ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वम्" इति श्रुतेः। *

(माण्डूक्योपनिषद् १)

---

* ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानभूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव। यच्चान्यत् त्रिकालातीतं तदप्योंकार एव॥ (माण्डूक्योपनिषद् १)

ओम् यही अक्षर सब कुछ है अर्थात् प्रणव ही के अन्तर्गत सब कुछ है। यही सर्वव्यापक ब्रह्म है।

*"ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म" इति भगवान् व्याचष्टे।

(भ० गीता ८।१३)

भगवान् ने गीता में भी कहा है कि ॐ यह एक अक्षर साक्षात् ब्रह्म है।

उपदिशति—येनासौ अमृतीभूत्वा मोक्षीभवति। येनोपदिष्टेन ज्ञानेनासौ जन्तुरमृतीभूत्वा (इत्यत्र अभूततद्भावे च्विः न भवति, स्वतः सिद्धत्वात्) अमृतोऽयमविद्यान्तर्हितो मर्त्यभावमापन्नो निवृत्ताज्ञानतत्कार्यें मोक्षीभवति।

भगवान् शङ्कर तारक मन्त्र का उपदेश देते हैं। इस उपदेश से जन्तु को परम ज्ञान प्राप्त होता है और वह अपने यथार्थ रूप को जान कर मुक्त हो जाता है। (अमृतीभूत्वा इस शब्द में अभूत तद्भाव अर्थ में च्वि प्रत्यय नहीं है क्योंकि जीवात्मा तो पहिले से ही मुक्त रहता है; पहिले बद्ध हो पीछे ज्ञान से मुक्त हो जाय यह

---

* ॐ मित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्॥ गीता ८।१३॥

ॐ यह एकाक्षर मंत्र साक्षात् ब्रह्म है इस मंत्र को जपता हुआ और मेरा ध्यान करता हुआ जो मनुष्य देह का परित्याग करता है वह परम गति को प्राप्त होता है।

सम्भव नहीं। जो यथार्थ में मुक्त है वही मुक्त हो सकता है और जो यथार्थ में बद्ध है वह बद्ध ही रहेगा; उसका मुक्त होना असम्भव है) यह जीव स्वभाव ही से अमृत एवं मुक्त है केवल अविद्यारूपी अन्धकार में पड़कर अपने को जीवन-मरण से युक्त समझने लगता है। जब अज्ञान और उस अज्ञान का कार्य निवृत्त हो जाता है तब वह अपनी यथार्थ मुक्तावस्था को प्राप्त हो जाता है। मुक्त को ही मोक्ष मिलता है इस विषय में अनेक श्रुतियां प्रमाण हैं:—

१ "मुक्त एव मुक्तो भवति"

जो स्वभाव ही से मुक्त है वही मुक्त हो सकता है।

२ "ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति"

(बृह० उ० ४।४।६)

ब्रह्म होने पर ही ब्रह्म की प्राप्ति हो सकती है।

३ "विमुक्तश्च विमुच्यते"

जो मुक्त होता है वही मोक्ष पाता है।

तस्मात् = ततो हेतोरविमुक्तमेव निषेवेत। अविमुक्तं न विमुञ्चेत् = न त्यजेदामरणान्तिकम्। एवमेवैतद्द याज्ञवल्क्यो बृहस्पतिना पृष्टः सन्नेवमेवैतदवगन्तव्यमित्युवाच याज्ञवल्क्यः।

इस लिए अविमुक्त क्षेत्र वाराणसी का ही सेवन करना

चाहिए। इस पवित्र पुरी काशी को मरण पर्यन्त न छोड़े। देवगुरु बृहस्पति के पूछने पर याज्ञवल्क्य ने अविमुक्त क्षेत्र के इस उत्तम रहस्य को बताया।

प्राणोत्क्रमणं न स्थावरविषयमिति चेत् न इत्याहः—

कुछ लोगों का मत है कि जरायुज, अण्डज, स्वेदज इन तीन प्रकार के भूतों के प्राणों का आना जाना तो ठीक है पर वृक्ष, लता आदि स्थावर भूतों के प्राणों का उत्क्रमण सम्भव नहीं। इस मत के खण्डन करने के लिए श्रुतियों का प्रमाण देते हैं—

१ "ओषधिवनस्पतयो यच्च किञ्च प्राणभृत्" इति श्रुतेः—

श्रुति कहती है कि जड़ी, बूटी, वृक्ष आदि जितने स्थावर हैं वे सब प्राणधारी भूत हैं।

यत् किञ्चेदं प्राणि जङ्गमं च पतत्रि च यच्च स्थावरं सर्वं तत् प्रज्ञानेत्रं प्रज्ञाने प्रतिष्ठितम्" इति श्रुतेः*।

[ऐ० उपनिषद् ५ खण्ड ३ मन्त्र]

---

* बीजानीतराणि चेतराणि चाण्डजानि च जारुजानि च स्वेदजानि चोद्भिज्जानि चाश्वा गावः पुरुषा हस्तिनो यत्किञ्चेदं प्राणि जङ्गमं च पतत्रि च यच्च स्थावरं सर्वं तत् प्रज्ञानेत्रं प्रज्ञाने प्रतिष्ठितम्। (ऐत० उप० ५।३)

संसार में जितने प्राणी हैं चाहे वे चलने फिरने वाले हों, चाहे आकाश में उड़नेवाले हों और चाहे स्थावर हों सभी उस परमज्ञानस्वरूप ब्रह्म की शक्ति के द्वारा संचालित हैं और उसी ब्रह्म में प्रतिष्ठित हैं। ब्रह्म के अतिरिक्त संसार में कोई भी वस्तु नहीं।

प्राणोत्क्रमणं जङ्गमेष्वभिव्यक्तं, स्थावरेष्वनभिव्यक्त-मेतावानेव विशेषः।

प्राणों का पाञ्चभौतिक शरीर से निकल कर उड़ जाना जङ्गम भूतों में तो साफ साफ प्रतीत होता है परन्तु स्थावर भूतों में प्रकट रूप से नहीं जान पड़ता, यही इन दोनों प्रकारों के भूतों में भेद है। कीट, पतङ्ग, पशु, पक्षी, मनुष्य आदि चलने फिरने वाले भूतों के शरीर से जब प्राण निकलने लगते हैं उस समय यद्यपि प्राण वायु निकलती हुई दिखाई नहीं देती पर यह पता अवश्य लग जाता है कि अब प्राण निकल रहे हैं। स्थावरों के प्राणों के निकलने के समय इस बात की प्रतीति नहीं होती।

"भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः" *

---

* भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः।
बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठाः नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः॥ (मनु० १—९६)

* संसार में जितने भूत हैं उनमें प्राणधारी श्रेष्ठ हैं; जितने प्राणधारी

प्राणाभिव्यक्त्यभिप्रायं प्राणित्वप्रतिपादनपरम् इति मानवं वाक्यमपि।

ऊपर बताए गए चारों प्रकारों के भूतों में प्राणी श्रेष्ठ होते हैं यह मनु भगवान् का वचन है। इस वचन में प्राणी शब्द से केवल जंगम जीव कृमि, कीट, पतङ्ग आदि लिए गए हैं। इससे यह नहीं समझना चाहिए कि स्थावर भूतों के लिए प्राणी शब्द का प्रयोग नहीं होता। यहां प्राणी शब्द का प्रयोग ऐसे जीवों के अर्थ में हुआ है जिनमें प्राणों का होना प्रकट रूप से मालूम पड़ता है अर्थात् जो जीव चलते फिरते दिखाई देते हैं। स्थावर और जंगम ये सब प्राणी अर्थात् सजीव हैं इस बात की पुष्टि के लिए कुछ कारण नीचे दिए जाते हैं:—

१ षड्भावविकारत्वाविशेषात्।

संसार में जितने भाव पदार्थ हैं उन सबों में छः* विकार होते हैं। पहिले तो उस पदार्थ की उत्पत्ति होती है, तब उसकी

हैं उनमें जो बुद्धि के सहारे जीवन निर्वाह करनेवाले हैं वे श्रेष्ठ हैं; बुद्धि-जीवियों में मनुष्य सब से उत्तम माने गए हैं और मनुष्यों में भी ब्राह्मण सब से उत्तम हैं।

* १ जायते, २ अस्ति, ३ वर्द्धते, ४ विपरिणमते, ५ अपक्षीयते, ६ नश्यति।

सत्ता संसार में होती है, फिर उसके अवयवों की वृद्धि होती है। तदनन्तर उसमें परिणाम होना प्रारम्भ होता है। तत्पश्चात् वह क्रमशः क्षीण होने लगता है और अन्त में उसका नाश हो जाता है अर्थात् फिर इस संसार में उसी रूप में दिखाई नहीं देता। ये छओ विकार जिस प्रकार मनुष्य, पशु, पक्षी आदि जंगमों में होते हैं उसी प्रकार वृक्ष लता आदि स्थावर पदार्थों में भी होते हैं। इसलिए इसमें कोई सन्देह नहीं कि स्थावर और जंगम सभी सजीव हैं।

२ प्राणित्वाविशेषात्;

प्राणित्व धर्म स्थावर और जङ्गम दोनों में है। जिस प्रकार कीट, पतङ्ग आदि जंगमों में प्राण हैं उसी प्रकार वृक्षादि स्थावरों में भी हैं। जिस प्रकार कीट, पतंग आदि उत्पन्न होकर बढ़ते और तब क्रमशः क्षीण होते हुए मर जाते हैं उसी तरह वृक्षादिकों की उत्पत्ति वृद्धि और नाश का भी क्रम है। अतः सभी स्थावर और जंगम प्राणवाले माने गए हैं।

३ स्थूलकारणोपाधिमत्वाविशेषात्;

सभी स्थावर एवं जंगम व्यक्तियों का शरीर स्थूल कारण अर्थात् पञ्चभूतों से बना है। पृथ्वी, जल, वायु, तेज और आकाश इन पांच भूतों से मनुष्यों के भी शरीर बने हैं और इन्हीं पाँचों

भूतों से वृक्षादि स्थावर वस्तुओं के शरीर बने हैं। इस लिए स्थावर और जगम दोनों में प्राण हैं।

४ जन्तुशब्दत्वाविशेषात्;

स्थावर और जंगम दोनों ही जन्तु शब्द से बोधित होते हैं अर्थात् जन्तु कहने से दोनों का ही बोध होता है। इस कारण दोनों ही जीवधारी हैं।

५ संसारचक्रे भ्राम्यमाणत्वाविशेषात्।

इस संसार चक्र में स्थावर और जंगम सभी चक्कर लगाते हैं। कभी ऊंची योनि में जन्म लेते हैं और कभी नीची योनि में जा पड़ते हैं। यह भिन्न भिन्न योनियों में जाना स्थावर-जंगम सभी के लिए अनिवार्य है। इस अपार संसार में सभी को ऊँची-नीची योनियों में जन्म लेना पड़ता है इसमें स्मृति प्रमाण है:—

स्थाल्यां विपच्यमानायां यवादीनां यथैव हि।
सुराणां नारकाणां च तथोर्ध्वाधः प्रवर्तनम्॥

जिस प्रकार बटलोही में यव, चावल आदि अन्न चुरते समय ऊपर-नीचे आया जाया करते हैं उसी प्रकार सभी जीवों का, चाहे वे स्वर्गलोक में रहनेवाले हों चाहे नरकलोक में रहनेवाले हों, स्वर्ग और नरक में आना-जाना लगा रहता है।

अत्राविमुक्ते स्थावरजङ्गमाश्च सर्वे प्राणिनो मोक्षेऽधि-क्रियन्ते, संकोचे कारणाभावात् ।

इस अविमुक्त क्षेत्र काशी पुरी में स्थावर और जंगम सभी प्राणी मोक्ष के अधिकारी होते हैं । प्राणिमात्र को यहां मोक्ष पाने का अधिकार है जंगमों को ही मुक्ति मिलती हो स्थावरों को नहीं इस प्रकार के संकोच करने का कोई कारण नहीं जान पड़ता और न इसमें कोई प्रमाण ही मिलता है । इस लिए यह वचन बहुत ही ठीक है :—

अभ्यस्य ब्रह्मसदनं श्रुत्या तात्पर्ययुक्तया ।
सर्वस्य बोध्यते जन्तोर्मुक्तिरेकेन जन्मना ॥
ते ब्रह्मलोकवाक्येन ब्रह्मलोकगता जनाः ।
यथा सर्वे विमुच्यन्ते तथैवात्रापि जन्तवः ॥
तत्र ब्रह्मोपदेष्टा स्यादत्र साक्षान्महेश्वरः ।
तस्यापि परमाचार्यो "यो ब्रह्माणम्" इति श्रुतेः ॥

जब जीव अपने पुण्यों के प्रताप से ब्रह्मलोक में पहुँच जाता है उस समय ज्ञान से युक्त वेद के वचनों से जन्तुमात्र को एक ही जन्म में परब्रह्म का बोध करा दिया जाता है और तब उसे मोक्ष मिल जाता है ।

ब्रह्मलोक में पहुँचकर वे जीव ब्रह्मलोक के उपदेश सुनकर

जिस प्रकार मुक्त हो जाते हैं उसी प्रकार काशीपुरी में भी मुक्त होते हैं।

वहाँ पर ब्रह्मा जी उपदेश देते हैं और यहाँ पर तो साक्षात् महेश्वर उपदेश देते हैं जो कि ब्रह्मा जी के भी आचार्य हैं जैसा कि "यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै" इस श्वेताश्वतर उपनिषद् के (६-८) मंत्र में कहा गया है।

अथ हैनमत्रिः पप्रच्छ याज्ञवल्क्यं य एषोऽनन्तोऽव्यक्त आत्मा तं कथमहं विजानीयामिति ? स होवाच याज्ञवल्क्यः सोऽविमुक्त उपास्यो य एषोऽनन्तोऽव्यक्त आत्मा सोऽविमुक्ते प्रतिष्ठित इति। सोऽविमुक्तः कस्मिन् प्रतिष्ठित इति ? वरणायां नाश्यां च मध्ये प्रतिष्ठित इति। का वै वरणा का च नाशीति ? सर्वान् इन्द्रियकृतान् दोषान् वारयतीति तेन वरणा भवतीति। सर्वान् इन्द्रियकृतान् पापान् नाशयतीति तेन नाशी भवतीति। कतमं चास्य स्थानं भवतीति ? भ्रुवो घ्राणस्य च या सन्धिः स एष द्यौर्लोकस्य परस्य च सन्धिर्भवति। एतद्वै सन्धिं सन्ध्यां ब्रह्मविद उपासते इति। सोऽविमुक्त उपास्यः इति सोऽविमुक्तं ज्ञानमाचष्टे। यो वैतदेवं वेदेति।

[जाबालोपनिषत् २]

(अत्र जाबालोपनिषद् के दूसरे मन्त्र की व्याख्या ग्रन्थकार करते हैं)

अथ हैनमत्रिः पप्रच्छ य एषोऽनन्तोऽव्यक्त आत्मा कथमहमिमं विजानीयामिति ?

महर्षि अत्रि ने परम ज्ञानी याज्ञवल्क्य ऋषि से पूछा कि हे महाराज ! इस अनन्त और अव्यक्त आत्मा को मैं कैसे जान सकता हूँ ! कहने का तात्पर्य यह कि इस सर्वव्यापी आत्मा का न तो आदि है और न अन्त और न यह प्रत्यक्ष रूप से दिखाई ही देता है । ऐसी अवस्था में यह आत्मा कैसे जाना जा सकता है ? इस प्रश्न पर याज्ञवल्क्य महर्षि उत्तर देते हैं—

"सोऽविमुक्ते उपास्यः" इत्युवाच याज्ञवल्क्यः ।

उस आत्मा की उपासना अविमुक्त में करनी चाहिए ।

"सोऽविमुक्तः कस्मिन् प्रतिष्ठितः" इति अत्रिः पप्रच्छ ।

महर्षि अत्रि ने पूछा कि आप जिस अविमुक्त के विषय में कहते हैं वह कहाँ है ?

"वरणायामस्यां च मध्ये प्रतिष्ठितः" इत्युवाच याज्ञवल्क्यः । (वरणायाम्, अस्याम् इत्यत्र विभक्तिव्यत्ययेन षष्ठी ज्ञातव्या)

परम विद्वान याज्ञवल्क्य ने कहा कि अविमुक्त क्षेत्र असी

और वरणा के बीच में है। ('वरणायाम्' और 'अस्याम्' इन दोनों शब्दों में षष्ठी के अर्थ में सप्तमी का प्रयोग हुआ है)

"का च वरणा भवति का च असी" इति अत्रिः पप्रच्छ ।

ऋषिवर्य अत्रि ने प्रश्न किया कि हे तपोनिधे ! आप किसे वरणा कहते हैं और किसे असी ?

सर्वानिन्द्रियकृतान् दोषान् वारयतीति 'वरणा' भवति, सर्वानिन्द्रियकृतान् पापान् अस्यति तेन 'असी' इत्युवाच याज्ञवल्क्यः ।

याज्ञवल्क्य ने अत्रि मुनि के पूछने पर कहा कि पांच कर्मेन्द्रिय(१) पाँच ज्ञानेन्द्रिय(२) और मन के द्वारा किए जानेवाले सभी दोषों को जो रोक दे अर्थात् इन इन्द्रियों को वे काम न करने दे उसका नाम 'वरणा' है। इन्द्रियों के द्वारा किए गए पापों को जो फेंक दे अर्थात् जीव को उन पापों से मुक्त कर दे उसी का नाम 'असी' है। वरणा तो जीव को नवीन पाप करने से रोकती है और असी उसके पूर्वकृत पापों को दूर कर देती है।

(सर्वान्, इन्द्रियकृतान् इत्युभयत्र सर्वाणि इन्द्रियकृतानि

---

१ ज्ञानेन्द्रियः—वाणी, हाथ, पैर, पायु और उपस्थ ।

२ कर्मेन्द्रियः—त्वचा, नाक, कान, आँख और जीभ ।

पापानि इति लिङ्गव्यत्ययो बोध्यः ।) वारयति = निवारयतीति वरणा । अस्यति = निरस्यतीति असिः । सर्वानिन्द्रियकृतान् पापान्नाशयतीति नाशीति केचित् पठन्ति । स्पष्टमन्यत् ।

(सर्वान् और इन्द्रियकृतान् ये दोनों शब्द पाप के विशेषण हैं और पाप शब्द नपुंसक लिंग का है इस लिए दोनों को पुंलिङ्ग से बदल कर नपुंसक लिंग में कर लेना चाहिए ।)

कुछ विद्वान् असि शब्द की जगह नाशी शब्द मानते हैं उनके अनुसार यह अर्थ होगा कि जो इन्द्रियों द्वारा किए गए सब पापों को नाश करे ।

"कतमच्चास्याः स्थानं भवति" इति अत्रिः पप्रच्छ ।

महर्षि अत्रि ने प्रश्न किया कि इस पूर्वोक्त वाराणसी का स्थान कहाँ है ?

"भ्रुवोर्घ्राणस्य यः सन्धिः" इत्युवाच याज्ञवल्क्यः । अत्र घ्राणशब्देन घ्राणवायुप्रचारकं घ्राणमूलमुच्यते ।

ज्ञाननिधि याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया कि दोनों भौंहें और घ्राण का जो मिलने का स्थान है उसी का नाम वाराणसी है । यहाँ घ्राण का अर्थ है घ्राणमूल जहाँ से घ्राणवायु उठती है । दोनों भौंहें और नासिका का सबसे ऊपरी हिस्सा ये तीनों जहाँ

जाकर मिलते हैं उसी स्थान का नाम वाराणसी है । इसमें आत्मारूपी प्राण को रखने से परम पद प्राप्त होता है इसके अन्य प्रमाण दिए जाते हैं ।

वाराणसी भ्रुवोर्मध्यमविमुक्तं तयो र्भ्रुवः ।
अध्यात्मेवातिदिष्टं तद्ध भ्रुवोर्घ्राणस्य चान्तरम् ॥

दोनों भौंहें और नासिका के ऊर्ध्वभाग के मिलने की जगह का नाम वाराणसी या अविमुक्त है यह आध्यात्मिक काशी है । इस आध्यात्मिक काशी में निवास करने से जीव को मुक्ति मिल जाती है अर्थात् आध्यात्मिक पुरी में जो कि सब प्राणियों के शरीर ही में विद्यमान है चित्त दृढ़ करने से जीव को मुक्ति मिलती है ।

"भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य"* इति भगवद्वाक्यमपि ।
दोनों भौंहों के बीच में प्राणों को चढ़ाकर ....

---

* प्रयाणकाले मनसाचलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव ।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ।
(भ० गीता ८।१०)

जो मनुष्य शरीर परित्याग करते समय निश्चय मन करके दृढ़ भक्ति के साथ योगबल के द्वारा दोनों भौंहों के बीच प्राणों का प्रवेश करता है उसे दिव्य परम पुरुष अर्थात् परब्रह्म प्राप्त होता है ।

.... ऐसा कहकर भगवान् ने भी पूर्वोक्त कथन का प्रतिपादन किया है।

अविमुक्ते प्राणान् परित्यजतः परब्रह्मप्राप्तिं प्रतिपादयति।

अविमुक्त क्षेत्र काशीपुरी में प्राण छोड़नेवाले को परब्रह्म की प्राप्ति होती है इसका प्रतिपादन आगे के श्लोकों द्वारा किया जाता है।

दिवः परस्य लोकस्य सन्धि सन्ध्येति चोच्यते।
सैव सन्ध्याऽविमुक्ताख्या तत्रेश्वरमुपासते॥
सगुणब्रह्मवेत्तारस्तेषां ज्ञानं स ईश्वरः।
आचष्टे चाविमुक्ताख्ये य एतस्यैव सेवकाः॥

आकाश और स्वर्गलोक जहाँ आकर मिलते हैं उसी सन्धि-स्थान का नाम सन्ध्या है। उसी सन्ध्या का नाम अविमुक्त है। सगुण ब्रह्म के जाननेवाले ज्ञानी लोग वहाँ ईश्वर की उपासना करते हैं। जो इसी अविमुक्त की मनसा, वाचा, और कर्मणा उपासना करते हैं उन्हें इसी क्षेत्र में ईश्वर ज्ञान देते हैं और उनकी संसार-सागर से मुक्ति हो जाती है।

जीवेश्वरविभागश्च प्रसङ्गात् प्रतिपाद्यते।
प्रकृतस्योपयोगित्वात् शास्त्रदृष्टेन वर्त्मना॥

प्रसङ्ग आ पड़ने के कारण और इस ग्रन्थ के विषय में उपयोगी होने के कारण शास्त्रों में बताई गई रीति से जीव क्या वस्तु है, ईश्वर क्या वस्तु है और इन दोनों में क्या भेद है इन सब बातों का प्रतिपादन किया जाता है—

सृष्टेश्च प्राक् सच्चिदानन्दबोधरूपमखण्डमद्वितीयं परं ब्रह्मैकमेव जागर्ति नान्यत् किञ्चिदस्ति । तथा च श्रूयते:—

संसार की सृष्टि होने के पहिले सत्, चित्, आनन्द और ज्ञान स्वरूप अखण्ड अद्वितीय एक परब्रह्म ही था और इसके अतिरिक्त स्थावर-जंगम कुछ भी नहीं था । इसमें अनेक वेद-वचन प्रमाण हैं:—

१ "आत्मा* वा इदमेक एवाग्र आसीत् ।
नान्यत् किञ्चन मिषत्" इति ।

(ऐतरेयोपनिषत् १ अ० १ खं०)

सृष्टिकाल के पूर्व केवल एक आत्मा ही था; इसके

---

* यच्चाप्नोति यदादत्ते यच्चात्ति विषयानिह ।
यच्चास्य सन्ततो भावस्तस्मादात्मेति कीर्त्यते ।

आत्मा सम्पूर्ण संसार में व्याप्त है, सब विषयों का ज्ञान होने के कारण सर्वज्ञ है, सब विषयों का उपभोग करता है और सदा वर्तमान रहता है अर्थात् नित्य है इसी लिए इसका नाम आत्मा है ।

अतिरिक्त और कुछ भी नहीं दिखाई देता था। आत्मा से भिन्न किसी भी वस्तु का व्यापार दिखाई नहीं देता था।

२ "सदेव सौम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं ब्रह्म" इति च।

(छान्दोग्य० ६-२-१)

महर्षि आरुणि अपने पुत्र श्वेतकेतु को उपदेश देते हैं कि हे पुत्र! यह भिन्न-भिन्न नाम और रूप धारण करनेवाला जगत् सत् ही था अर्थात् जिस प्रकार इस समय जगत् में अनेक विकार दिखाई देते हैं वैसे विकार सृष्टि के आदि में नहीं थे। उस समय यह जगत् ईश्वराकार ही था। उस समय एक अद्वितीय ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं था। सृष्टि होने पर भिन्न-भिन्न नाम-रूप दिखाई देने लगे।

तन्मायया द्वैरूप्यं प्रतिपद्यते। माया च कार्यकारण-रूपेण द्विरूपा। कारणोपाध्युपहितं यच्चैतन्यं तत् सर्वज्ञं सर्वशक्ति सर्वेश्वरं जगत्सृष्टिस्थितिप्रलयकारणं भवति। कार्योपाध्युपहितं यच्चैतन्यं तज्जीवसंज्ञमल्पशक्ति संसारि परतंत्रं भवति। कार्योपाधिषु जीवशरीरेषु कारणोपाधीश्वरस्य कार्येषु कारणानुवृत्तेरधिष्ठातृत्वमुपपद्यते।

वही सच्चिदानन्दस्वरूप परमेश्वर अपनी ही माया से दो प्रकार

का हो जाता है। माया भी दो प्रकार की होती है एक तो कार्यरूप और दूसरी कारणरूप। कारणोपाधि से युक्त अर्थात् कारणस्वरूप चैतन्य सर्वज्ञ होता है (वह त्रिकाल और त्रिलोक की बात जानता है;) सर्वशक्तिमान् होता है; सचराचर जगत् का स्वामी होता है। संसार की सृष्टि, पालन और प्रलय वही करता है।

कार्योपाधि से युक्त अर्थात् कार्यस्वरूप चैतन्य को जीव कहते हैं। इस जीव में बहुत ही संकुचित शक्ति है। यह बार-बार शरीर धारण करता है और बार-बार शरीर का परित्याग करता है। यह स्वाधीन नहीं है और इसे उस परमशक्तिमान् की इच्छानुसार कार्य करना पड़ता है। यह सिद्धान्त है कि कार्य में उसके कारण की अनुवृत्ति अवश्य रहती है अर्थात् कार्य में कारण की प्रधानता होती है। इसी सिद्धान्त के अनुसार यह सिद्ध होता है कि कार्योपाधिवाले जीवों के शरीरों का अधिष्ठाता कारणोपाधिवाला ईश्वर है। कहने का तात्पर्य यह है कि सभी जीवों का अधिष्ठाता एक ईश्वर है।

जीव और ईश्वर ये दो वस्तु हैं और इन दोनों में कितना अन्तर है यह आगे दी गई श्रुति से अच्छी तरह जाना जा सकता है—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया

समानं वृक्षं परिषस्वजाते।

तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्व-
त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥

(श्वेता० ४-६, मुण्डकोपनिषत् ३-१)

जीव और ईश्वर दो पक्षी हैं। वे सदा एक साथ रहते हैं। इन दोनों की अभिव्यक्ति का कारण एक वही परब्रह्म है। ये दोनों फल के उपभोग के लिए शरीररूपी वृक्ष का आश्रय करके निवास करते हैं। इन दोनों में से पहिला अर्थात् जीव अपने शुभ और अशुभ कर्म से उत्पन्न होनेवाले सुखद एवं दुःखद अनेक प्रकार के फलों को अविवेक के वशीभूत होकर भोगता है और दूसरा अर्थात् नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव सर्वज्ञ ईश्वर किसी भी फल का जीव के समान उपभोग नहीं करता, वह केवल द्रष्टा और प्रेरयिता है, दर्शनमात्र ही उसका उपभोग है।

पर्यायत्वमविद्याया मायायाश्च तथाऽपरे।
प्रयोगेषु प्रसिद्धत्वात् मन्यन्ते लोकवेदयोः ॥

कुछ विद्वान् लोग माया और अविद्या को पर्यायवाचक शब्द समझते हैं। उनका कहना है कि माया और अविद्या ये दो वस्तु नहीं किन्तु एक ही वस्तु हैं क्योंकि लोक और वेद दोनों में उनका एक ही अर्थ में प्रयोग होता है।

शक्तिद्वयमविद्यायाः कल्पयन्ति च ते ततः।

*स्वाश्रयामोहिनी काचिन्मोहिनीमपरामपि ॥

विद्वान् लोग अविद्या की दो शक्तियाँ मानते हैं। एक शक्ति तो अपने आश्रय को मोहित नहीं करती और दूसरी अपने आश्रय को मोहित कर लेती है। पहिले अमोहिनी शक्तिवाली अविद्या का आश्रय ईश्वर है; उस ईश्वर के ऊपर अविद्या का असर नहीं होता। दूसरी का आश्रय जीव है; इस जीव के ऊपर अविद्या का पूरा असर होता है और मायाजाल में फँस जाता है।

तमो मोहो महामोहस्तामिस्रं ह्यन्धसंज्ञितः।
अविद्या पञ्चपर्वैषा प्रादुर्भूता महात्मनः ॥
(सूतसंहिता १।१०)

उस सर्वशक्तिमान् परब्रह्म से पाँच प्रकार की अविद्या प्रकट हुई—१ तम, २ मोह, ३ महामोह, ४ तामिस्र और ५ अन्धतामिस्र।

---

*अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया ॥ (गीता ४।६)

१ तम—अविवेक अर्थात् कौन वस्तु सत् है और कौन असत् इस बात का न जानना।

२ मोह—आत्मा से भिन्न देह, इन्द्रिय आदि वस्तुओं को ही आत्मा समझना। इसी का दूसरा नाम अस्मिता है।

ब्रह्मदेवमनुष्येषु पशुषु स्थावरेषु च ।
पञ्चधा या विमुक्तात्मा वर्तते चिदपाश्रया ॥

---

३ महामोह—शरीर को सुख देनेवाली माला, चन्दन आदि वस्तुओं के पाने की इच्छा करना । इसका दूसरा नाम राग है ।

४ तामिस्र—सुखद पदार्थों की प्राप्ति में बाधा डालनेवालों से विरोध करना । इसका दूसरा नाम द्वेष है ।

५ अन्धतामिस्र—शरीर को क्षणिक सुख देनेवाले चन्दन, माला आदि पदार्थों को हानिकर जानते हुए भी मूर्ख के समान उन्हीं वस्तुओं को पाने की लालसा करना और उनका न छोड़ना। इसका दूसरा नाम अभिनिवेश है ।

इन्हीं पांचों प्रकार की अविद्या का स्वरूप ग्रन्थकारों ने दूसरी प्रकार का बताया है—

तमोऽविवेको मोहः स्यादन्तःकरणविभ्रमः ।
महामोहस्तु विज्ञेयो ग्राम्यभोगसुखैषणा ॥
मरणं ह्यन्धतामिस्रं तामिस्रं क्रोध उच्यते ।
अविद्या पञ्चपर्वैषा प्रादुर्भूता महात्मनः ॥

१ तम—अविवेक ।

२ मोह—अन्तःकरण अर्थात् मन, बुद्धि और अहंकार में भ्रम हो जाना ।

३ महामोह—लौकिक भोग के सुख की इच्छा करना ।

४ तामिस्र—क्रोध ।

५ अन्धतामिस्र—मरण ।

पितामह ब्रह्मा में, सभी देवों में, मनुष्यों में, पशुओं में और स्थावरों में यह पाँच प्रकार की अविद्या वर्तमान है।

तामविद्यां तथाभूतां भगवान् परमेश्वरः।
संहरत्युदयेनैव सहस्रांशुस्तमो यथा॥

इस पाँच प्रकार की अविद्या को भगवान् परमेश्वर ज्ञान के उत्पन्न होने पर उसी प्रकार हटा लेते हैं जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणों से अन्धकार को दूर कर देते हैं।

"जन्तोरत्र हि प्राणैरुत्क्रममाणस्य रुद्रस्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे" इत्यस्यायमर्थः। वाराणसीमध्यवर्तिनां मनुष्य व्यतिरिक्तानां जङ्गमानां स्थावराणां च वाराणसीप्राप्ति-स्थितिप्रलयकारणानां पुण्यकर्मणां भूयस्त्वात् प्रारब्धेन शरीरेण क्रियमाणयोः पुण्यपापयोरसम्भवात् प्रारब्धस्य कर्मणो भोगादेव परिक्षयात् प्राणप्रयाणसमये सर्वज्ञः सर्व शक्तिस्सर्वान्तर्यामी परमकारुणिकः परमेश्वरः स्वतः सिद्ध-मात्मरूपम् अविद्यामहाणादभिव्यञ्जयति=गमयतीत्यर्थः। तथा च श्रूयतेः—

परमपावनी वाराणसी पुरी में निवास करनेवाले मनुष्यों से भिन्न जंगम और स्थावर भूतों को काशी की प्राप्ति, काशी में

स्थिति और काशी में शरीर परित्याग करने के कारण बहुत अधिक पुण्यों का लाभ होता है, उनके प्रारब्ध शरीर से किए गए पुण्य-पाप फलाधायक* होते नहीं और उनके प्रारब्ध कर्मों का भोग ही से नाश हो जाता है। तदनन्तर प्राणों के निकलने के समय सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् सर्वान्तर्यामी परम कृपालु परमेश्वर जीव की अविद्या को दूर करके अपने स्वतःसिद्ध रूप को प्रकट कर देता है। इसका प्रमाण वेद में मिलता है:—

यो देवानां प्रथमं पुरस्ताद्विश्वाधिको यो रुद्रो महर्षिः। हिरण्यगर्भं पश्यति जायमानं स नो देवः शुभया स्मृत्या संयुनक्ति।

रुद्र नामक परमेश्वर सभी देवताओं से पूर्व के हैं अर्थात् इन्द्र, वरुण आदि सभी देवताओं की सृष्टि पीछे हुई आदि में यही एक थे। संसार के जितने स्थावर-जंगम हैं उन सबों से इनका अधिक महत्त्व है। ये सर्वज्ञ हैं और इनके महत्त्व का अन्त नहीं। हिरण्यगर्भ, जिनसे कि इस सचराचर जगत् की

---

* मनुष्य की योनि ही एकमात्र कर्मयोनि है। मनुष्य योनि से भिन्न अन्य सभी स्थावर और जंगम योनियाँ केवल भोगयोनियाँ हैं। इन योनियों में किए गए पुण्य कर्म अथवा पाप कर्म का तनिक भी फल नहीं होता।

सृष्टि हुई है, इन्हीं के सामने उत्पन्न हुए हैं। ऐसे परमेश्वर हम लोगों को कल्याण एवं मोक्ष देनेवाली बुद्धि दें। *

ईश्वरस्य सर्वशक्तिमत्त्वं च श्रूयते:—

ईश्वर सब प्रकार की शक्तियों से सम्पन्न हैं इसका प्रमाण श्वेताश्वतर उपनिषद् में दिया गया है—

न तस्य कार्यं करणञ्च विद्यते
न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते ।
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते
स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च ॥

(श्वेताश्वतर ६—८)

उन महेश्वर परमेश्वर का न तो समष्टि-व्यष्टि स्वरूप शरीर है और न समष्टि—व्यष्टि स्वरूप करण अर्थात् अन्तः करण है। वे अद्वितीय सुख का अनुभव करते हैं इसलिए उनके बराबर

---

* ठीक इसी से मिलता हुआ श्वेताश्वतर उपनिषद् के तीसरे अध्याय का चौथा मन्त्र है:—

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः ।
हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥

इस मन्त्र का भी वही अर्थ है; भेद केवल इतना है कि इसमें परमेश्वर को हिरण्यगर्भ एवं अन्य देवों का उत्पादक माना है।

संसार में कोई नहीं है; उनसे बड़ा होना तो असम्भव ही है। श्रुतियों में और स्मृतियों में उनकी शक्ति सबसे बढ़कर बताई गई है और वह अनेक प्रकार की है अर्थात् अनेक प्रकार के कार्यों को उत्पन्न करती है। उन परमेश्वर में सम्पूर्ण विषयों के जानने की शक्ति स्वाभाविक है। अर्थात् वे त्रिकालज्ञ एवं सर्वज्ञ हैं।

(मनुष्य योनि से भिन्न योनियों में उत्पन्न जङ्गमों और स्थावरों को किस प्रकार ज्ञान प्राप्त होता और किस प्रकार उन्हें मुक्ति मिलती है यह तो पहिले कह चुके हैं। अब भिन्न २ अवस्थाओं को पहुँचे हुए मनुष्यों को किस प्रकार मोक्ष मिलता है यह आगे बताया गया है।)

मनुष्येषु ये जीवन्मुक्तास्तेषां प्राणोत्क्रमणं नास्ति।
"न तस्य प्राणा उत्क्रामन्त्यत्रैव समवलीयन्ते" इति श्रुतेः।
(बृहदारण्यक ४. ४. ६.)

मनुष्यों में जितने जीवन्मुक्त हैं उनके प्राणों का उत्क्रमण नहीं होता। इस विषय का प्रतिपादन वेद ने किया है। बृहदारण्यक उपनिषद् में लिखा है कि "जीवन्मुक्त पुरुष के प्राण ऊपर नहीं जाते किन्तु यहीं लीन हो जाते हैं।"

ते यत्र क्वापि निवसन्तः प्रारब्धकर्मक्षये विदेहकैवल्यं प्राप्नुवन्ति।

वे जीवन्मुक्त पुरुष चाहे कहीं भी रहें परन्तु प्रारब्ध कर्मों के क्षय होते ही विदेह कैवल्य[1] को प्राप्त हो जाते हैं।

ये च सगुणब्रह्मोपासकाः, ये च केवलं फलनिरपेक्षाः सन्तः कर्मानुष्ठातारश्चोपासकाः, ये च केवलं निरपेक्षाः सन्तः श्रुतिस्मृत्युक्तस्ववर्णाश्रमोचितकर्मानुष्ठातारस्तेषां चत्वारिंशत् संस्कारैरशेषैरसंस्कृतत्वेपि अष्टभिरात्मगुणैर्युक्तानां प्राणप्रयाणसमये पूर्वोक्तन्यायेन भगवान् परमेश्वरस्तारकं ब्रह्मोपदिशति।

जो मनुष्य सगुण ब्रह्म की उपासना करते हैं, जो मनुष्य धार्मिक कृत्य करते रहते हैं और भगवान् की उपासना भी किया करते हैं परन्तु इन सत्कर्मों से उत्पन्न होनेवाले फलों की कुछ भी चाह नहीं करते; और जो किसी प्रकार की चाह न रखते हुए भी श्रुति-स्मृति में बताए गए वर्ण और आश्रम के अनुकूल कर्मों को करते हैं; ऊपर बताए गए इन तीन प्रकार के मनुष्यों को चाहे उनके चालीसों संस्कार[2] हुए हों या नहीं; परन्तु आत्मा के आठ गुणों[3] से युक्त होने के कारण प्राण जाने के समय पहिले

---

१ विदेह कैवल्यः—परिशिष्ट (२) में देखिए।

२ चालीस संस्कारः—परिशिष्ट (३) में देखिए।

३ आत्मा के आठ गुणः—परिशिष्ट (४) में देखिए।

बताए गए नियम के अनुसार ही भगवान् परमेश्वर तारक ब्रह्म का उपदेश देते हैं। कहने का तात्पर्य यह कि जो निर्गुण ब्रह्म के उपासक नहीं भी हैं और जिन्हें पूर्ण ब्रह्मज्ञान नहीं है परन्तु किसी भी कर्म के फलों के भोगने की इच्छा न रख कर श्रुतियों और स्मृतियों में बताए गए नियमों का पालन करते हुए सत्कर्म किया करते हैं उन्हें भी सर्वशक्तिमान् परमेश्वर काशी पुरी में प्राण छोड़ते समय तारक ब्रह्म का उपदेश देकर मुक्त कर देते हैं।

परन्तु जो लोग इन पूर्वोक्त नियमों का भी पालन नहीं करते केवल काशीपुरी में निवास मात्र करते हैं उनको भी मोक्ष मिलता है इसी का प्रतिपादन आगे की पंक्तियों में किया जाता है:—

अन्येषामप्यशेषाणाम् गङ्गावगाहनदर्शनाभ्यां यज्ञदानतपोभिश्च यादृच्छिकैः पुराकृतैः कर्मभिः सुकृतैः

"ऊषरः पुण्यपापानां धन्या वाराणसी पुरी"

"इदं प्रिये क्षेत्रमतीव मे प्रियं संसारजीवोषरमूषराणाम्"

इति वचनाभ्यामूषरत्वेन प्रसिद्धक्षेत्रप्रभावेण च नष्टावशिष्टपापकर्मणः काम्यस्य पुण्यकर्मणो मुक्तिरेकेन जन्मना इति मुक्तेरवश्यम्भावित्वात्।

पहिले कहे गए जीवन्मुक्त आदि से अतिरिक्त सभी

साधारण काशीनिवासियों के परमपुण्यसलिला भगवती गंगा में स्नान करने से तथा उनके दर्शन करने से, यज्ञ, दान और तप करने से, संयोगवश पूर्व जन्म में किए गए पुण्य कर्मों के आचरण से तथा सभी पाप-पुण्य के लिए ऊषर भूमि के समान इस काशी क्षेत्र के प्रभाव से सभी बचे हुए पाप कर्म नष्ट हो जाते हैं और यही दशा काम्य (१) कर्म और पुण्य कर्मों की भी होती है।

इस नगरी में किए गए पाप कर्मों का न अशुभ फल होता है और न पुण्य कर्मों का शुभ फल। शास्त्र में कहा गया है कि "यह वाराणसी नाम की नगरी धन्य है क्योंकि यह क्षेत्र पाप और पुण्य कर्मों के लिए ऊषर भूमि के सदृश है अर्थात् इसमें किए गए पाप और पुण्यों की फल देनेवाली शक्ति नष्ट हो जाती है।" यही बात श्रीभगवान् शङ्कर पार्वतीजी से कहते

---

१ किसी उत्तम फल के प्राप्त करने की लालसा से जो सत्कर्म किए जाते हैं उनको काम्य कर्म कहते हैं।

काशी पाप–पुण्य के लिए ऊषर है इसका प्रमाण वाराह पुराण में भी मिलता है –

रेणुका सूकरः काशीकालो वटेश्वरो।
कालिञ्जरो महाकाल ऊषरा अष्ट मुक्तिदाः॥

हैं कि "हे प्रिये! यह काशी क्षेत्र मुझे बहुत ही प्यारा लगता है; इसमें निवास करनेवाले सभी जीवों के कर्म उसी प्रकार फल देने में असमर्थ होते हैं जिस प्रकार कि ऊषर भूमि में बोए गए बीज।" कहने का तात्पर्य यह है कि काशी पुरी में चाहे पुण्य कर्म किए जावें चाहे पाप कर्म परन्तु उनमें से एक का भी फल नहीं मिलता। वे सब काशी में शरीर परित्याग करते ही *भैरवी यातना भोगने पर भस्मीभूत हो जाते हैं और इसी कारण एक ही जन्म में जीव काशी में मर कर मुक्त हो जाता है।

एक जन्म में मुक्ति मिलने का प्रमाण दिया गया है—

प्रारब्ध एव शरीरे भोक्तव्यत्वोपपत्तेः

"अत्युत्कटैः पुण्यपापैरिहैव फलमश्नुते"

इति वचनात् काश्यां कृतयोः पुण्यपापयोरुत्कटत्वात् वर्तमान एव शरीरे भोक्तव्यनियमाच्चानयोः पुण्यपापयोः फलदानाय

---

* आमर्दयिष्यति भवांस्तुष्टो दुष्टात्मनो यतः॥

(का० खं० ३१-२०)

भगवान् शंकरजी ने भैरवजी से कहा कि आप (जीवों का) उद्धार करने के लिए प्रसन्न होकर दुष्ट जीवों को ताड़न करेंगे।

"ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन ! तिष्ठति[1]"

(भ० गी० १८।६१)

"मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्"

(श्वेता० ४।१०)

इति वचनात् मायावी परमेश्वरः प्राणप्रयाणसमयात् पूर्वक्षणेनैकेनानेककालीनेष्टानिष्टकर्मफलोपभोग्ययोग्यशरीरान्तरानुप्रवेशं माययैवोद्भाव्य इष्टानिष्टान् स्वप्नकल्पान् भोगान् अनुभाव्य पश्चात् पूर्वोक्तन्यायेन तारकं ब्रह्मोपदिशातीत्यवश्यमेवाभ्युपगन्तव्यम् ।

कर्मों के फलों का भोग शरीर प्राप्त होने पर ही हो सकता है। परन्तु "जो बहुत ही उत्कट पाप और पुण्य होते हैं उनका फल यहीं भोगना पड़ता है" ऐसा वचन है। काशी में किए गए पाप और पुण्य बड़े ही उत्कट होते हैं इसमें सन्देह ही नहीं। 'ईश्वर सब प्राणियों के हृदय में निवास करते हैं" ऐसा गीता का

---

१ ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेर्जुन ! तिष्ठति ।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥

(भ० गी० १८।६१)

हे अर्जुन ! ईश्वर सब प्राणियों के हृदय में निवास करता है और उन सबको यन्त्र (मशीन) की तरह सदा चलाया करता है।

कथन है। "प्रकृति को माया कहते हैं और उस प्रकृति के अधिष्ठाता महेश्वर को मायावान् अथवा मायावी कहते हैं" वे ही सबके हृदय में निवास करनेवाले मायावी भगवान् प्राण जाने के एक क्षण भर पहिले अपनी माया के बल से चिरकाल में किए गए शुभ और अशुभ कर्मों के फलों के भोगने के योग्य एक दूसरे शरीर में जीवात्मा का प्रवेश कराकर उसे स्वप्न के समान सुखद और दुःखद भोगों का अनुभव कराकर पीछे पहिले बताए गए नियम से तारक ब्रह्म का उपदेश देते हैं यह समझ लेना चाहिए।

सूतसंहिता का वचन है कि—

ईदृशी परमा निष्ठा गुरोः साक्षान्निरीक्षणात्।
कर्मसाम्ये त्वनायासात् सिद्धत्येव न संशयः॥

आदि गुरु भगवान् शिव के साक्षात् दर्शन करने से और तारक मन्त्र के उपदेश के द्वारा कर्म का नाश हो जाने पर वह परम ज्ञान विना किसी प्रयास के हो जाता है और जीव को मोक्ष मिल जाता है।

कर्मसाम्ये = कर्मणोः सुकृतदुष्कृतयोः फलभोगेन साम्ये सतीत्यर्थः। अन्यथा प्रत्यक्षश्रुतिविरोधात् प्राणैरुत्क्रममाणस्येति वर्तमानार्थविहितप्रत्ययसामान्यात "मुक्ति-

रेकेन जन्मना" इति वचनात् अत्रैव मृतमात्राणामिति मात्रच् प्रत्ययप्रयोगप्राबल्यात् ।

फलभोग की दृष्टि से जब पाप और पुण्य दोनों प्रकार के कर्म बराबर हो जाते हैं और उनमें फल भोगाने की शक्ति नहीं रह जाती उस समय कर्मसाम्य होता है और तभी जीव को अनायास मुक्ति मिल जाती है। एक तो श्रुति का कथन है कि देखते देखते भगवान् शंकर तारक मन्त्र के उपदेश के द्वारा जीव को मुक्त कर देते हैं, दूसरे 'प्राणैरुत्क्रममाणस्य' इस वचन में वर्तमान काल का बतानेवाला शानच् प्रत्यय लगा है जिससे साफ जान पड़ता है कि प्राण निकलते समय ही मुक्ति मिलती है। तीसरे 'मृतमात्राणाम्' इसमें मात्रच् प्रत्यय के प्रयोग करने से जान पड़ता है कि मरते ही मुक्ति मिलती है। इन तीनों बातों से जान पड़ता है कि काशी में शरीर परित्याग करने के अनन्तर ही कर्मसाम्य हो जाता है।

"न चातो व्यवधानवन्ति" इति वाराणसीमुक्तेः कालान्तरेण व्यवधानाश्रवणात् । श्रुत्यर्थगुणानामन्येषामपि वचनानां भूयसां सम्भवात् ।

काशी में मृत्यु पाने से मुक्ति में व्यवधान नहीं होता अर्थात् प्राण छूटते ही उसी क्षण मुक्ति मिल जाती है। इस वचन से

साफ जान पड़ता है कि वाराणसी में मरने से किसी भी कर्म के फलों को भोगने के लिए जन्म नहीं लेना पड़ता किन्तु तत्क्षण मोक्ष मिल जाता है। वेद में कहे गए इस विषय के प्रतिपादन करनेवाले और भी अनेक वचन होंगे जिनसे यह प्रमाणित किया जा सकता है कि काशी में शरीर परित्याग करने से एक ही जन्म में मुक्ति हो जाती है दूसरा जन्म नहीं लेना पड़ता।

इस प्रकार की अनेक कल्पनाएँ की जा सकती हैं जिनमें श्रुति-स्मृति के प्रमाण मिलते हों कहा गया है कि—

प्रमाणवन्त्यदृष्टानि कल्प्यानि सुबहून्यपि।
वालाग्रशतभागोऽपि न कल्प्यो निष्प्रमाणकः॥

जिनके प्रमाण मिलते हों ऐसे हजारों अदृष्ट विषयों की कल्पना की जा सकती है परन्तु जिसमें प्रमाण न मिलता हो उसकी लेश मात्र भी कल्पना नहीं करनी चाहिए। कहने का तात्पर्य यह है कि स्वर्ग, नरक आदि यद्यपि अदृष्ट विषय हैं, किसी मनुष्य ने इन्हें अपनी आंखों से देखा नहीं है, परन्तु शास्त्र में इनके प्रमाण मिलते हैं इसलिए इनके विषय में जितनी कल्पना करनी हो की जा सकती है। परन्तु जिसके विषय में श्रुति, स्मृति, पुराण आदि किसी भी आप्त ग्रन्थ का प्रमाण न मिलता हो उसके विषय में कभी कुछ भी अपनी इच्छा के अनुसार कल्पना नहीं

करनी चाहिए। यह विषय आगे के उदाहरण से स्पष्ट हो जाएगा।

"पीनो देवदत्तो दिवा न भुंक्त" इति वाक्ये रात्रि-भोजनमन्तरेण पीनत्वानुपपत्ते यथा रात्रिभोजनं कल्प्यते तथैवात्रापि श्रुतिस्मृत्यन्यथानुपपत्त्या मुक्तिरेकेन जन्मना जन्तोरेष्टव्या।

'हृष्ट-पुष्ट देवदत्त दिन में कुछ भी नहीं खाता' इस बात के कहने से साफ मालूम हो जाता है कि वह रात्रि को भोजन करता है, यदि वह रात्रि के समय भी भोजन न करता होता तो वह मोटा-ताजा कभी नहीं हो सकता। इस अर्थापत्ति प्रमाण से प्रत्यक्ष जान पड़ता है कि वह अवश्यमेव रात्रि के समय भोजन करता होगा। इसी प्रकार श्रुति और स्मृति के अनेक ऐसे वचन हैं जिनका इसके सिवा और कोई समुचित अर्थ हो ही नहीं सकता कि काशी में शरीर परित्याग करने से एक ही जन्म में मुक्ति मिल जाती है।

[1]जाग्रत्स्वप्नयोः कर्मफलभोगे न कश्चिद्विशेषोऽस्ति। "तस्य त्रय आवसथास्त्रयः स्वप्नाः" इति श्रुतेः॥

(ऐत० १ अ० ३ खं०)

---

१ जाग्रतः—जिस अवस्था में आँख, कान, नाक आदि इन्द्रियां अपने अपने विषयों का ग्रहण करती हैं उस अवस्था का नाम जाग्रत् अवस्था है।

मायाविमोहितानां क्षणेनैकेन विग्रहान्तरपरिग्रहा विचित्राश्चानुभवाः श्रूयन्ते उक्तं च वासिष्ठे—

जीव के जीवन काल में तीन अवस्थाएँ होती हैं जाग्रत् स्वप्न[1] और सुषुप्ति[2]। जिस प्रकार जाग्रत् अवस्था में कर्मों के फलों का भोग होता है उसी प्रकार स्वप्नावस्था में भी कर्मों के फलों का भोग हो जाता है। इन दोनों अवस्थाओं में कर्म-फलों का भोग समान रूप से होता है दोनों में कोई भेद नहीं। इसमें ऐतरेयोपनिषद् प्रमाण है।

उस सृष्टि करने वाले ईश्वर के रहने के लिए तीन स्थान हैं—जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति। जाग्रत् अवस्था में उसका निवास दाहिनी आँख में, स्वप्नावस्था में मन के भीतर और सुषुप्ति के समय हृदयाकाश में होता है। इन्हीं तीनों अवस्थाओं का नाम स्वप्न है। जाग्रत् अवस्था को भी स्वप्न कहते हैं क्योंकि वह भी एक दीर्घ स्वप्न है। इसमें भी जीव अज्ञान में ही पड़ा रहता है।

---

१ स्वप्नः—जाग्रत् अवस्था में जो जो बातें देखीं, सुनीं और जिनका अनुभव किया उन्हीं की वासना से सोते समय जो प्रपंच दिखाई देता है उसी का नाम स्वप्न है।

२ सुषुप्तिः—सोते समय इस प्रकार का ज्ञान होना कि मैं कुछ भी नहीं जानता मैं सुख से निद्रा का अनुभव कर रहा हूं इसी अवस्था का नाम सुषुप्ति है।

इन तीन निवासस्थानों में रहकर जीव चिरकाल तक अविद्या के कारण अज्ञान रूपी निद्रा में पड़ा रहता है और अनेक प्रकार के अनर्थों से पीड़ित होकर भी वह नहीं जागता।

जीव माया के वश में होकर एक दम अज्ञान बना रहता है और वह क्षण भर में दूसरा शरीर धारण करके अनेक प्रकार के सुख-दुःख आदि का अनुभव करता है। उसे अनेक प्रकार के झूठे अनुभव मोहवश होते हैं परन्तु उन्हें वह सच्चे ही समझता है। योग वासिष्ठ में लिखा है कि—

यथा स्वप्नमुहूर्ते स्यात् संवत्सरशतभ्रमः।
तथा मायाविलासोत्थो जायते जाग्रति भ्रमः॥

सभी स्वप्न क्षण भर में समाप्त हो जाते हैं परन्तु कभी कभी उसी स्वप्न में ऐसा जान पड़ता है कि सैकड़ों वर्ष बीत गए। उसी प्रकार माया के वश से जाग्रत् अवस्था में भी भ्रम होता है। संक्षेप शारीरक में भी इसका प्रमाण मिलता है।

उक्तञ्च संक्षेपशारीरके—

सुप्तो जन्तुः स्वल्पमात्रेऽपि काले,
कोटीः पश्येद् वृत्तसंवत्सराणाम्।
कोटीः पश्येदेवमागामिकानां,
जाग्रत्काले योजयेत् सर्वमेतत्।

जीव सो जाने पर अपनी स्वप्नावस्था में थोड़े ही समय में ऐसा समझता है जैसे सैकड़ों साल व्यतीत हो गए हों।

इसी प्रकार जाग्रत् अवस्था में भी समझ लेना चाहिए कि जो कुछ प्रतिक्षण होता है वह केवल भ्रम मात्र है। शैवागम में भी इसी विषय का प्रतिपादन किया गया है।

शैवागमेऽपि—

कपालमिन्दुः करिचर्म नागाः काशीपुरी कण्ठगतस्य जन्तोः।
मूर्च्छासु मूर्च्छासु परिस्फुरन्ति संज्ञासु संज्ञासु तिरोभवन्ति ॥

काशीपुरी में जब जीव के प्राण गले तक पहुँच जाते हैं और वह मरने लगता है उस समय जब जब उसे मूर्च्छा (बेहोशी) आती है तब तब उसे शिवजी के हाथ का कपाल, उनके ललाट पर का चन्द्रमा, उनके ओढ़ने का करिचर्म और उनके शरीर पर के सर्प दिखाई देते हैं और जब जब मूर्च्छा दूर होती है है तब तब सब आँख के ओझल हो जाते हैं। अर्थात् जब प्राण जाने के समय बेहोशी होती है उस समय महादेव जी तारक मन्त्र सुनाने के लिए आते हैं और उनके कपाल, चन्द्रमा आदि दिखाई देने लगते हैं परन्तु जब फिर होश हो आता है तो वे सब चीजें फिर लुप्त हो जाती हैं।

काशीखण्डेऽपि—

कृत्वा कर्माण्यनेकानि कल्याणानीतराणि च।

तानि क्षणात् समुत्क्षिप्य काशीसंस्थो मृतो भवेत् ॥

अपने जीवन काल में जीव से अनेक प्रकार के पाप और पुण्य हो जाते हैं। पर काशी में मरते ही वह उन सब कर्मों के बन्धन से मुक्त हो जाता है। प्राणों के छूटते ही क्षण भर में उसके सब कर्म नष्ट हो जाते हैं।

महापापौघशमनीं पुण्योपचयकारिणीम्।
भुक्तिमुक्तिप्रदामन्ते को न काशीं सुधीः श्रयेत् ॥

बड़े बड़े पापों को शान्त कर देनेवाली, अनेक पुण्यों को उत्पन्न करनेवाली अनेक प्रकार के सुखों के भोग दे कर अन्त में मोक्ष देनेवाली काशी का ऐसा कौन बुद्धिमान् होगा जो सेवन न करे। जिन्हें कुछ भी बुद्धि होगी वे ऐसी भुक्ति-मुक्ति देनेवाली पवित्र पुरी का अवश्य ही सेवन करेंगे।

पुराणान्तरेष्वपि स्मर्यते तथाहि—

भगवान् मायाविमोहितः कदाचिन्नारदः कन्यात्वमवाप। तां कश्चिदुदवाहयत्। तदा पुत्रान् बहूनजनयत्। सांसारिकं च दुःखमनेककालीनमन्वभूत्। भर्तुः पुत्राणां च वियोगः। येन शोकेन पुनर्नारद एवासीत्। इति।

पुराणों में ऐसी अनेक कथाएँ मिलती हैं जिनसे जान पड़ता है कि माया के वश में पड़कर बड़े बड़े ज्ञानी मानी मुनियों को

भी अनेक प्रकार के भोगों का अनुभव करना पड़ा है। देवर्षि नारद का मोह इसका ज्वलन्त उदाहरण है।

एक समय नारद ऋषि भगवान् की माया में फँस गए। माया के वश से वे कन्या हो गए और उनका विवाह एक पुरुष से कर दिया गया। अब उनके बाल-बच्चे उत्पन्न होने लगे और खासी गृहस्थी जम गई। संसार के सभी सुख-दुख झेलने पड़े। बड़ी बड़ी आपत्तियां सिर पर आकर पड़ीं। चिरकाल तक अनेक प्रकार के दुःख भोगने पड़े। अन्त में यहाँ तक हुआ कि पति और पुत्रों की मृत्यु हो गई और इन्हें इस वियोग से इतना शोक हुआ कि उन्होंने अपने को सरोवर में जा डुबोया। गोता मारते ही फिर नारद के नारद हो गए।

इसी प्रकार स्कन्द पुराण में एक मुनि की कथा कही गई है।

स्कन्द पुराणे—

गङ्गातटे वसन् कश्चिन् मुनिर्मायाविमोहितः किरातकन्या समभवत्। तस्याः पाणिं किरातः कश्चिदग्रहीत्। सा च पुत्रान् बहून् प्रासूत, पौत्रांश्चापश्यत। सा कदाचिदुदकाहरणाय गङ्गातीरमुपासीत्। किरातजातिस्वाभाव्याद्वासः कुम्भं च तीरे निधाय गङ्गायां प्राविशत्। प्रविष्टमात्रा क्षणेनैकेन स एव मुनिरभवत। विलम्बितां तामालक्ष्य

तद्भर्तृपुत्रसम्बन्धिबान्धवाः तद्देशमागन्य वासः कुम्भं तदीयं दृष्ट्वा गङ्गाप्रवाहेण सा नीतेति निश्चित्य महान्तं प्रलापं चक्रुः। ततस्तेन मुनिना 'सोऽहमस्मि, इति प्रबोधिताः प्रकृतिस्था नाभवन्। अथ विज्ञानैर्बहुभिः प्रबोध्यमानाः यथागतं सत्यमित्थमेवैतदिति शोकं परित्यज्यागच्छन् इति।

प्राचीन काल में परमपावनी गङ्गा नदी के तीर पर एक मुनि निवास करते थे। वे किसी कारण से दैवी माया में फँस गए और एक किरात की कन्या हो गए। समय आने पर उसका एक किरात के साथ विवाह हो गया। धीरे धीरे उसके कई एक पुत्र हुए और उन पुत्रों के भी पुत्र हुए। उसका बड़ा कुटुम्ब बढ़ा।

एक दिन वह जल लाने के लिए गंगा के किनारे गई। उसने अपने कपड़े उतार कर किनारे पर रख दिए और वहीं पर अपना घड़ा भी रख दिया। ये सब चीजें तीर पर रख कर वह किराती गंगा में जा घुसी। घुसते ही उसकी सूरत एक क्षण में बदल गई और उसका रूप फिर मुनि का सा हो गया।

किराती के आने में जब देर हुई तब उसके घर के लोग बहुत घबड़ाए और उसे खोजने के लिए गंगाजी के किनारे गए। वहाँ उन लोगों ने उसके कपड़े देखे और वहीं घड़ा रक्खा पाया। उस स्थान पर किराती को न देख कर वे लोग समझ गए कि वह

गंगा में बह गईं। वे वहीं हाहाकार मचाने लगे और विलाप करने लगे।

उन्हें रोते-बिलपते देख कर वे मुनि वहीं जा पहुँचे और कहने लगे कि तुम लोग क्यों रोते और विलाप करते हो! मैं ही किराती था। गंगा में डुबकी लगाते ही मेरा रूप बदल गया है और अब इस रूप में हो गया है। तुम लोग क्यों रोते विलपते हो? मुनि ने उन लोगों को बहुत समझाया पर उनका शोक दूर नहीं हुआ। तब मुनि ने ज्ञान की बहुत सी बातें सुनाईं और अनेक उदाहरण देकर उन्हें बहुत समझाया। बहुत समझाने बुझाने पर उनका शोक दूर हुआ और वे अपने घर गए।

वाराह पुराण में भी इसी प्रकार के मोह की कथा कही गई है:—

वाराहपुराणेऽपि—

लवणाख्यो राजा कश्चित् मन्त्रिसामन्तनृपतिभूयस्यां सभायां सिंहासनस्थो मायाविना केनापि विमोहितस्तदानीं मायादर्शितमश्वरत्नमधिरुह्य समस्तां पृथ्वीं बभ्राम। अथ जविना तेन पातितः कस्मिंश्चिद्विजनेऽशयिष्ट। क्षुत्तृषापरीतश्चायमरण्ये व्यापारं किञ्चित् कुर्वतः पितुः कृते पानीयमन्नं चादाय गच्छन्तीं चाण्डालकन्यकामेकामपश्यत्। त-

दन्तिकमुपसृत्याब्रवीत्। "क्षुत्पिपासार्दितस्य स्तोकमन्नं पानीयं च देहि" इति। सा चैनमुवाच "त्वं चेन्मम भर्ता भविष्यसि तर्हि दास्यामि" इति। 'तथा' इत्यभ्युपगम्य अथैकदेशस्थमन्नमभक्षयत् पानीयं चापिवत्। ततः सा तं पितुरन्तिकं नीत्वा वृत्तान्तमावेद्य तेनानुज्ञाता भाविना भर्त्रा साकं स्वभवनमयासीत्। मातृपितृभगिनीनां चैनमदर्शयत् ते च ताश्चैनमभ्यनन्दन्नमंस्त। तां चोद्वाहविधिना पर्यग्रहीत्। तया सह चिरकालमुवास। तस्यां पुत्रान् बहूनुदपादयत्। अथ पुनः कालेन गच्छता दुर्भिक्षोपहतस्तस्माद्देशात् तया भार्यया ताभिश्च प्रजाभिः सार्द्धं देशान्तरमयासीत्। स कदाचिन्निर्जले प्रदेशे कस्मिंश्चिद्वृक्षमूले क्षुत्पिपासार्दिताभिः प्रजाभिः भार्यया च सार्द्धं परिश्रान्तोऽशयिष्ट। "तात! अन्नं पानीयं च देहि" इति क्षुत्पिपासार्दितैः शिशुभिः प्रार्थ्यमानस्तेभ्यस्तेभ्यस्तदानीं तद्दातुमुपायं कश्चिदलभमानस्तेषामार्तिपरवशं वचः सोढुमशक्नुवन् बलादेधांस्याहृत्य सन्निपात्य प्रज्वाल्य "पक्वं शरीरमेते भक्षयन्तु" इति बुद्ध्वा ज्वालाजटिलमग्निं प्राविशत्। ततः क्षणात् उन्मील्य अक्षिणी विस्मयाविष्टः क्षणेनैकेन तद्वृत्तं मन्त्रिसामन्तनृपतिभ्यः

कथयामास–इति कथा वासिष्ठरामायणे । एवंजातीयकाः संत्यन्याश्चानेकशः कथाः ।

स्रवण नामका एक बड़ा प्रतापी राजा था । एक समय वह अपने मन्त्री, सेनापति तथा अन्य राजाओं के साथ अपनी सभा में बैठा था। उसी समय एक जादूगर आया और उसने अपने जादू के बल से एक उत्तम घोड़ा सामने लाकर खड़ा कर दिया। उस जादूगर की माया में फँस कर राजा ने उसे असली घोड़ा जान लिया और झटपट उस पर जा चढ़ा। सवारी करते ही वह घोड़ा राजा को ले उड़ा और बहुत दूर ले जाकर एक निर्जन वन में उसे उसने अटक दिया। वहाँ भूख और प्यास के मारे राजा तड़पने लगा।

एक चाण्डाल उसी जंगल में कुछ काम कर रहा था। उसके खाने–पीने के लिए अन्न और जल लिए उस चाण्डाल की कन्या उसी ओर जा निकली। उसे देखते ही राजा के जान में जान आ गई और वह उससे थोड़ा सा अन्न और जल माँगने लगा।

उसने कहा कि मैं यों तो देनेवाली नहीं, यदि आप मुझसे विवाह करने की प्रतिज्ञा करें तो मैं आपकी सब कुछ सेवा करने के लिए तयार हूँ। भूख और प्यास के मारे राजा के प्राण निकल रहे थे, उसने अपने प्राणों की रक्षा करना परम आवश्यक समझा, इसलिए उसने विवाह करना स्वीकार कर लिया।

वह चाण्डाल-कन्या बड़ी प्रसन्न हुई और राजा को उसने बड़े प्रेम से भोजन कराया। फिर वे दोनों उस चाण्डाल के यहाँ गए और उस कन्या ने अपने पिता से सब हाल कह सुनाया। पिता की आज्ञा लेकर राजा को वह अपने घर ले गई और अपनी माता, बहिन और भाइयों से राजा का परिचय देकर सब हाल सुनाने लगी। उन लोगों की रानी से वहीं पर इन दोनों का विधि-पूर्वक विवाह हो गया और राजा अपनी नव-विवाहिता वधू के साथ वहीं निवास करने लगा। वह बीस वर्ष वहाँ रहा। कई लड़कियाँ और कई लड़के उसके घर में खेलने कूदने लगे। खासी गृहस्थी जम गई।

कुछ समय के अनन्तर उस देश में घोर अकाल पड़ा। कुएँ और तालाब सूख गए। पेड़ों में पत्ते न रहे। उस प्रान्त भर में हाहाकार मच गया। सब लोग घर-बार छोड़ कर भागने लगे। राजा भी अपनी पत्नी और बच्चों को लेकर दूसरे देश को चला। जाते २ वह बहुत दूर तक पहुँचा; परन्तु कहीं अन्न-जल नहीं मिला। अन्त में एक वृक्ष के नीचे अपने कुटुम्ब समेत जा बसा।

भूखे-प्यासे छोटे छोटे बच्चे करुण स्वर से चिल्ला चिल्ला कर अन्न और जल माँगने लगे। उनका अतिरोदन सुन कर राजा की छाती फटी जाती थी। अन्न-जल का कहीं ठिकाना तो था ही

नहीं। उसने अपने मन में सोचा कि यदि अपने शरीर को जला डालूँ तो मेरे मांस को खाकर ये बच्चे अपने प्राणों की रक्षा कर सकेंगे। इसी विचार से ईंधन इकट्ठा करके उसमें आग लगा कर वह धधकती हुई आग में कूद पड़ा।

माया तो थी ही। आँख खोलते ही राजा फिर वहीं का वहीं; वही सभा और वही मन्त्री। राजा ने सभासदों के सामने आदि से अन्त तक सब हाल कह सुनाया। उस जादूगर की करामात से सब चकित हो गए और मुक्तकण्ठ से उसकी प्रशंसा करने लगे।

यह कथा वासिष्ठ रामायण (योगवासिष्ठ) में कही गई है। इसी प्रकार की सैकड़ों कथाएँ पुराणों में हैं।

एवमुक्तप्रकारेण काश्यामपि केषाञ्चित् स्मर्यमाणः शरीरान्तरप्रवेशः कालभैरवयातनाद्यनुभवश्च मायामय एवेत्यभिज्ञैरवगन्तव्यम्। अयमर्थः सनत्कुमारसंहितायां स्पष्टः—

इसी प्रकार पुराणों में कई एक ऐसी कथाएँ मिलती हैं जिनसे जाना जाता है कि काशी में मरने पर भी जीव को दूसरे शरीर में प्रवेश करना पड़ा अथवा काल भैरव की यातना भोगनी पड़ी। परन्तु यह सब परमेश्वर की अपार लीला के द्वारा होता और

क्षण भर में समाप्त हो जाता है; केवल प्रतीत ऐसा होता है जैसे हजारों साल बीत गए हों जैसा कि ऊपर की कथाओं से जान पड़ता है। यही बात सनत्कुमारसंहिता में स्पष्ट शब्दों में कह दी गई है—

अत्रैव पापैः सह चेन्मृतोऽसौ न जन्ममृत्यू लभते त्ववश्यम् ।
कालेन मे यामगणैः फलेषु नियोजितस्तत्सकलं प्रयुज्य ॥
अल्पेन कालेन समस्तमेव सार्थं पुरा रुद्रपिशाचरूपैः ।
भवप्रसादेन कृतोपदेशः पिशाचयोनेरपि मुक्तिमेति ॥

इस परम पवित्र काशीधाम में यदि कोई प्राणी पापों के अवशिष्ट रहते ही मर जाता है तो भी। उस प्राणी को फिर कभी जन्म और मरण के दारुण दुःख नहीं झेलने पड़ते। यमदूत उस प्राणी को उन पापकर्मों के फलों में नियुक्त अवश्य करते हैं, पर वह प्राणी रुद्रपिशाच का रूप धारण कर बहुत ही थोड़े समय में उन सब कर्मों का फल भोग लेता है और तब शिवजी के प्रसाद से तारक मन्त्र का उपदेश पाकर उस पिशाचयोनि से शीघ्र ही मुक्त हो जाता है।

"यथात्र पुण्यं कृतम् अक्षयं स्यात्तथात्र पापं न तयोर्विशेषः" इति स्तुतिनिन्दार्थवादः। अन्यथा सर्वेषां मनुष्याणां पुण्यपापयोरल्पयोर्वा संभवात् तयोरक्षयश्रुत्यङ्गीकारे

न कस्यापि मुक्तिः स्यात्तदत्र मुक्तिप्रतिपादकयोः श्रुतिस्मृत्योर्वैयर्थ्यं स्यात् । अतो हेतोः काश्यां कश्चित् कालमुषित्वा बहिर्गत्वा ये म्रियन्ते तद्विषयमेव तदित्यवगन्तव्यम् ।

जैसे काशी में किया हुआ थोड़ा भी पुण्य अधिक और चिरस्थायी फल देता है वैसे ही काशी में किए हुए पाप-कर्मों का फल भी अधिक और चिरस्थायी होता है । इन दोनों में कोई अन्तर नहीं । ऐसा शास्त्रों का कथन काशी में किए हुए पुण्य कर्मों की स्तुति और पाप कर्मों की निन्दा के लिए है । यदि काशी में किए हुए पाप-पुण्यों का फल अक्षय मान लिया जाय तो "काशी में मरने से मुक्ति होती है" यह श्रुति असंगत हो जाएगी । क्योंकि किसी मनुष्य से कुछ न कुछ पुण्य-पाप किए बिना रहा ही नहीं जा सकता । इस लिए ऐसा मानना चाहिए कि काशी में कुछ काल रहकर जो बाहर जाकर मरते हैं, उनको काशी में किए हुए पाप और पुण्यकर्मों का फल अधिक और चिरस्थायी रूप से भोगना पड़ता है । काशी में मरनेवालों को तो पुनर्जन्म लेकर पाप अथवा पुण्यकर्मों का फल भोगना ही नहीं पड़ता ।

"वाराणस्यां कृतं पापं वज्रलेपो भविष्यति" इत्यपि वचनं तथैव मन्तव्यम् । "पापकर्मा कश्चित् काश्यां म्रियते

पुण्यकर्मा वहिर्म्रियते” इति नैवं विज्ञानवद्भिः विचारणी-यम्। एकस्मिन्नेव जन्मनि पुण्यपापयोः परिच्छेत्तारो वयम्, अनादौ संसारे मनोवाक्कायैः पुण्यपापयोः परिच्छेत्ता परमेश्वरः।

इसी तरह 'काशी में किया हुआ पाप वज्रलेप होता है' यह वचन भी जो काशी में पाप कर्म करके अन्यत्र मरते हैं, उन्हीं पर लागू होता है ऐसा मानना चाहिए। कुछ लोगों को यह शङ्का होती है कि कोई कोई पाप करनेवाले क्यों काशी में मरते हैं और कोई कोई पुण्य करनेवाले अन्तकाल में क्यों काशी के बाहर जाकर मरते हैं, ऐसा होने से पुण्यात्मा के मोक्ष मिलने में बाधा पड़ती है और पापी अनेक प्रकार के पाप करता हुआ भी केवल काशी में मरने से मोक्ष का अधिकारी बन जाता है। परन्तु ज्ञानवान् विचारशील पुरुषों को ऐसा विचार न करना चाहिए। हम लोगों की दृष्टि में कोई पुण्यात्मा मालूम पड़ता है कोई पापात्मा पर निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि वह यथार्थ में पुण्यात्मा है या नहीं। क्योंकि हम लोग तो एक ही जन्म के पाप-पुण्यों को देख सकते हैं और उसी से अपना विचार कर सकते हैं। परन्तु ईश्वर तो सब जान सकता है कि अनादि काल से उस जीव ने अनेक जन्म पाकर मन, वाणी और

शरीर से कितने पाप और पुण्य किए हैं। उन्हीं पाप-पुण्यों के अनुसार परमेश्वर नियमन करता है और किसी व्यक्ति को काशी में मरने का सौभाग्य देता है और किसी को मरने के समय काशी के बाहर कर देता है। यह बात सत्य है कि पापी को कभी काशी नहीं मिल सकती और इसी प्रकार जिसके बहुत ही उत्कट पुण्य होंगे उसी को काशी मिल सकती है। वे पुण्य चाहे उसी जन्म में किए गए हों या किसी पूर्व जन्म में किए गए हों।

यही बात 'ब्रह्मवैवर्त' पुराण में स्कन्द ने अगस्त्य से उस समय कही जब कि विन्ध्याचल[१] ने ऊँचे होकर आकाश तक अपनी चोटी फैला दी थी और सूर्य, चन्द्र आदि का भी मार्ग रोक दिया था। उस समय देवताओं की प्रार्थना से अगस्त्य महर्षि को काशी छोड़ बाहर जाना पड़ा था। काशी के वियोग से उन्हें असह्य मानसिक कष्ट हो रहा था—

न ज्ञायते सूक्ष्मतरं हि किञ्चित् कर्मास्ति लोकस्य सुदुर्विभाव्यम्। योगादियज्ञादितपोभिरुग्रैर्युक्तस्य ते सम्प्रति नास्ति काशी।

सांसारिक जीवों के कर्म ऐसे गुप्त होते हैं कि जिनका पता लगना बहुत ही कठिन है। यों तो उन कर्मों का पता नहीं लगता

---

१ अगस्त्य की कथा परिशिष्ट ([illegible]) में देखिए।

और जान पड़ता है कि ऐसा कोई कर्म है ही नहीं जिसका फल उस प्रकार का हो; परन्तु जब वह कर्म अपना फल भोगा देता है तब उसका पता चलता है। हे अगस्त्यमुनि! आप इतने बड़े योगी हैं, यज्ञ करना तो आपका एक प्रधान कर्तव्य है; बड़े कठिन तप आपने कर डाले हैं और सब प्रकार से शुद्ध और पुण्यात्मा हैं उस पर भी आपका न जाने कब का एक कर्म था जिससे काशी अब आपके भाग्य से उतर गई और आपको काशी छोड़नी पड़ी।

"न ज्ञायते कस्य किमस्ति पुण्यं स्वल्पोपि काश्यां तनुभृत् सदास्ते। देवादयोऽपि प्रभवन्ति नैव स्थातुं क्षणं काशिकायां कुगर्वाः।

किसके कितने पुण्य और किसके कितने पाप हैं इस बात का पता लगाना बहुत कठिन है। कभी वे मनुष्य जिनके पुण्य बहुत थोड़े मालूम पड़ते हैं काशी में निवास करते रहते हैं। कभी कभी देवता लोग भी, जो कि बहुत ही धर्मात्मा समझे जाते हैं, काशी में क्षण भर भी नहीं रहने पाते और उनका अभिमान नष्ट हो जाता है।

कृतप्रयत्नापेक्षस्तारकं ब्रह्म उपदिशति इत्यवगन्तव्यम्। अन्तर्बहिः करोतीति च प्रतिनियतैव वस्तुशक्तिः।

यथाग्नेः दाहकशक्तिस्तथा काश्यां मोचकशक्तिः प्रतिनियतैव।

भगवान् शङ्कर के द्वारा तारकमन्त्र के उपदेश मिलने का अवसर तभी प्राप्त होता है जब कि जीव अपने सतत प्रयत्न से उसके योग्य हो जाता है। सभी वस्तुओं में कुछ न कुछ शक्ति का रहना तो निश्चत ही है। जिस प्रकार अग्नि में दाहिका (जलानेवाली) शक्ति नियमितरूप से रहती है उसी प्रकार काशी पुरी में भी जीव को संसार के बन्धनों से छुड़ा कर मुक्त करने की शक्ति वर्तमान है।

यथा शुक्तौ पयोवाहात् पतिता जलबिन्दवः।
मुक्ताः स्युस्तथा काश्यां स्थिताः सर्वेऽपि जन्तवः।

स्वाती नक्षत्र में मेघ से जितनी बूँदें शुक्ति में गिरती हैं वे सब मुक्ता (मोती) बन जाती हैं। ठीक उसी प्रकार काशी में रहनेवाले और वहीं शरीर परित्याग करनेवाले सभी जन्तु मुक्त हो जाते हैं। उनका फिर जन्म नहीं होता।

कीटाः पतङ्गाः पशवश्च वृक्षाः
जले स्थले ये विचरन्ति जीवाः।
मण्डूकमत्स्याः कृमयोऽपि काश्यां,
त्यक्त्वा शरीरं शिवमाप्नुवन्ति ॥

जल में या स्थल में रहनेवाले सभी कीट, पतंग, पशु,

मेढक, मछलियां यहाँ तक कि छोटे छोटे कृमि भी काशी में शरीर का परित्याग कर शिव में लीन हो जाते हैं। काशीपुरी में छोटे से छोटे जीव की भी जब मृत्यु होती है तब वह शिवलोक में पहुँच कर शिवसायुज्य को प्राप्त हो कर संसार के आवागमन से मुक्त हो जाता है।

पुण्यानि पापान्यखिलान्यशेषं सार्थं सबीजं सशरीरमार्ये !
इहैव संहृत्य ददाति बोधं यतः शिवानन्दमवाप्नुवन्ति ॥

हे आर्ये ! जिस समय जीव काशीपुरी में शरीर का परित्याग करता है उस समय भगवान् शंकर उसके समस्त पापों और पुण्यों को बीजसहित नष्ट कर देते और उन्हें ऐसा उत्तम ज्ञान देते हैं जिस से उन्हें शिव के समान ही आनन्द प्राप्त होता है।

सूच्यग्रमात्रमपि नास्ति ममास्पदेऽस्मिन्,
स्थानं सुरेश्वरि मृतस्य न यत्र मोक्षः।
भूमौ जले वियति वाशुचिमेध्यतो वा,
सर्पाग्निदस्युपविभिर्निहतस्य जन्तोः।

हे देवि ! मेरी इस काशीपुरी में ऐसी कोई सुई भर भी जगह नहीं है, जिसमें मरने पर जीव को मुक्ति न मिले। चाहे भूमि में मरे, चाहे जल में मरे और चाहे आकाश में मरे; पवित्र स्थान में मरे चाहे अपवित्र स्थान में मरे; उस जीव को मुक्ति अवश्य ही

मिल जाती है। जो लोग सर्प के काटने से, अग्नि में जल जाने से वज्र के गिरने से अथवा चोरों के द्वारा असमय मारे जाते हैं उनकी अकालमृत्यु कही जाती है और उन्हें सद्गति नहीं होती; परन्तु काशी में किसी प्रकार भी मरे मुक्ति अवश्य ही मिलती है।

स्थिरा काश्यामिहैवैका प्रतिज्ञा हि मया कृता।
अत्रैव मृतमात्राणां तिरश्चामपि देहिनाम् ॥
भक्तानामप्यभक्तानां पुण्यपापात्मनामपि।
मुक्तिं दास्यामि सर्वेषां भक्तानामेव सा बहिः ॥

शिवजी कहते हैं कि मैंने यह दृढ़ प्रतिज्ञा की है कि इस काशीपुरी में मरनेवाले सभी मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग आदि को चाहे वे भक्त हों या नहीं, पुण्यात्मा हों अथवा पापी अवश्य मुक्ति दूंगा। काशी से बाहर मरनेवाले उन्हीं मनुष्यों को मैं मुक्ति दूंगा जो मेरे अनन्य भक्त हैं, दूसरों को नहीं।

विनापि योगैश्च विनापि पुण्यैर्विनापि दानैस्सहितोपि पापैः।
मृतः प्रयात्येव हि यत्र तत्र मामेव निर्दग्धसमस्तदोषः ॥

अपने जीवन-काल में किसी प्रकार की योग-क्रिया किए विना ही, किसी प्रकार के पुण्य कार्य के बिना किए ही यहाँ तक कि घोर पापों से घिरे रहने पर भी जीव काशी में मरते

ही मेरे लोक में पहुँच कर मुक्त हो जाता है और उसके सब दाप नष्ट हो जाते हैं।

अत्र साक्षात् महादेवो देहान्ते स्वयमीश्वरः।
व्याचष्टे तारकं ब्रह्म जन्तूनामपवर्गदः॥

काशी पुरी में देह के परित्याग करते ही साक्षात् परमेश्वर शिव जीव को तारकमंत्र का उपदेश दे देते हैं जिससे उसे मोक्ष मिल जाता है।

सनत्कुमारसंहितायाम्—

महात्मनां शान्ततपोधनानां शापो मुनीनामपि यत्र भग्नः।
तत्क्षेत्रमासाद्य[1] महत्सन्निधानं वणिग् जनोप्यत्र वसन् कृतार्थः॥

बड़े तपस्वी शान्त मुनियों ने कई बार अनेकों मनुष्यों को उनके भीषण अपराध पर शाप दिए हैं परन्तु यदि वे काशी में आकर वस गए हैं तो उनके सब पाप दूर हो गए हैं और मुनियों का शाप झूठा हो गया है। ऐसे पवित्र तीर्थ काशीपुरी में रहने से अनेक प्रकार के व्यापारों में फँसा हुआ वणिक् भी कृतार्थ हो जाता है।

---

१ पाठभेद—

तत्क्षेत्रमासाद्य महाद्युनद्याः पिवन् पयोऽप्यत्र वसन् कृतार्थः।

परम पवित्र स्वर्णदी गंगा का जल पीकर ही रहता हुआ मनुष्य कृतार्थ हो जाता है।

योगोऽत्र निद्रा क्रतवः प्रचाराः,
स्वेच्छाशनं देवि महानिवेद्यम् ॥
लीलात्मनो देवि ! पवित्रदानं,
जपः प्रजल्पः शयनं प्रणामः ॥

शिवजी पार्वतीजी से कहते हैं कि हे देवि ! इस काशीपुरी में साधारण सोना योगनिद्रा के समान है; अपनी इच्छा के अनुसार भोजन करना ही परमेश्वर को उत्तम नैवेद्य समर्पण करना है; अपनी लीला ही पवित्र दान है, वात चीत करना ही जप है और निद्रा लेने के लिए लेटना ही भगवान् को साष्टाङ्ग प्रणाम करना है। कहने का तात्पर्य यह है कि इस पुरी में जो कुछ भी काम किया जाता है वह परमपद की प्राप्ति में सहायक होता है।

मोक्षं सुदुर्लभं मत्वा संसारं चातिभीषणम् ।
अश्मना चरणौ हत्वा वाराणस्यां वसेन्नरः ॥

सभी जानते हैं कि मोक्ष कितना दुर्लभ है और संसार कितना भयंकर है। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि अपने पैरों पर पत्थर पटक कर तोड़ डाले और काशीपुरी में निवास करे। अर्थात् किसी भी दशा में काशी के बाहर पैर न रक्खे क्योंकि काल के आने का समय कोई नहीं जानता। काशी के बाहर मरने से हाथ में आई हुई मुक्ति निकल जाएगी।

इदं कलियुगं घोरं सम्प्राप्तं पाण्डुनन्दन !
गतिमन्यां न पश्यामि मुक्त्वा वाराणसीं पुरीम् ॥

हे पाण्डुनन्दन ! यह घोर कलियुग आ गया है। इसमें वाराणसी नगरी को छोड़ कर और कहीं मुक्ति मिलनी असम्भव दिखाई दे रही है।

जपध्यानविहीनानां ज्ञानविज्ञानवर्जिनाम् ।
तपस्युत्साहहीनानां गतिर्वाराणसी नृणाम् ॥

जो मनुष्य न तो जप करते हैं और न परमेश्वर का ध्यान ही करते हैं; ज्ञान और विज्ञान से रहित हैं, तप करने के लिए जिनके हृदय में लेशमात्र भी उत्साह नहीं ऐसे मनुष्यों की गति काशी में ही हो सकती है। दूसरी जगह ऐसे मनुष्यों को मोक्ष मिलना अत्यन्त असम्भव है।

असयत्यसिर्वारयति प्रवेशे कर्माणि जन्तोर्वरणा वरेण्या ।
वाराणसी मध्यगता तयोश्च निश्शेषयत्यूषरताप्रभावात् ॥

वाराणसी के दक्षिण में असि नाम की नदी है और उत्तर में वरणा नाम की नदी है। इन दोनों नदियों के बीच में वाराणसी है। असि का काम है कि जन्तुओं के शुभ-अशुभ कर्मों को बाहर निकालकर फेंक दे और वरणा का काम है कि जीव के कर्मों को जीव के साथ रहने से रोक दे। अर्थात् वरणा के प्रभाव से तो

जीव के कर्मों का फल जीव के पास आने नहीं पाता और असि के प्रभाव से यदि कोई फल किसी प्रकार जीव तक पहुँच जाए तो हटाकर दूर कर दिया जाता है। इन दोनों नदियों के बीच में बसी हुई वाराणसी अपनी ऊषरता के प्रभाव से जीव के सब कर्म निश्शेष कर देती है, कोई भी कर्म अपना फल जीव को नहीं देने पाता और इसीसे उसकी मुक्ति हो जाती है।

अनिदमुदयमाद्यं धाम वामार्द्धकान्तं,
स्वमहिमरसिक्तं यत् स्वानुभूत्यैकमानम्।
अनघरतमपास्तद्वैतमात्मावबोधं,
प्रकटयति पशूनां कालपाकेन काश्याम्॥

भगवान् शंकर का परम प्रकाशमान अर्धनारीश्वर रूप चक्षुरादि इन्द्रियों के अगोचर है। अपनी महिमा में ही विराजमान है। अपने ही अनुभव से इसका ज्ञान हो सकता है इसके जानने में बाह्य प्रमाणों से सहायता नहीं मिल सकती। यह परम पवित्र तथा निर्मल आनन्दरूप है। इसके दर्शनमात्र से द्वैतभाव दूर हो जाता है। इस प्रकार का अपना अलौकिक तेजस्वी रूप करुणावरुणालय भगवान् शंकर पशु के समान विवेक-रहित जीव को उसके सांसारिक भोग पूरे कराकर दिखा देते हैं। इस अलौकिक रूप का दर्शन करते ही जीव मुक्त हो जाता है।

भगवान् शङ्कर काशीपुरी में शरीर परित्याग करनेवाले जीवों को ऐसा अलौकिक पवित्र स्वानुभव गोचर आत्मज्ञान दे देते हैं जिस से उनका द्वैतभाव दूर हो जाता है और मोक्ष पा जाते हैं।

जन्मान्तरसहस्रेषु मोक्षो लभ्येत वा न वा।
इहैव लभ्यते जन्तोर्मुक्तिरेकेन जन्मना॥

हजारों जन्म के कठिन उद्योग करने पर भी मोक्ष मिलेगा या नहीं इसमें सन्देह ही है। काशी ही एक ऐसी पुरी है जिसमें प्राण त्याग करने से एक ही जन्म में निस्सन्देह मुक्ति मिलती है।

गर्भाधानाद्यखिलमपि यत् कर्मजातं द्विजाना-
मेकं न्यूनं यदि भवति मुने! पातयिष्यत्यवश्यम्॥
नो चेत् स्वर्गादिषु फलमदः सर्वशास्त्रेषु सिद्धं
तस्मात् काश्यां कथमपि वसेद्‌ बुद्धिमान् मुक्तिसिद्ध्यै॥

हे मुने! ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों के गर्भाधान, पुंसवन आदि सभी संस्कार जब विधिविहित रीति से किए जाते हैं तभी वे पवित्र समझे जाते हैं, इन संस्कारों में से यदि एक भी संस्कार न किया जाय तो वह मनुष्य कितना भी उच्च क्यों न हो उसका पतन अवश्य होगा। यदि पतन न भी हो तो भी शास्त्रों में बताए गए स्वर्गादिक फल उसको मिल सकते हैं, मुक्ति नहीं मिल सकती। इस लिए बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिए कि किसी न किसी

प्रकार काशी में ही निवास करे तभी उसे मुक्ति की प्राप्ति हो सकती है।

काशि ! श्रीमति ! सर्वकर्मशमनी स्वाभाविकी काचन
प्रत्यक्षं तव शक्तिरस्ति महती मातर्महीमण्डले ॥
यत् सर्वत्र सदा वसन्नपि शिवस्त्वय्येव लब्ध्वास्पदं
विश्वं तारयते विशेषविमुखः पारं भवाम्भोनिधेः ॥

हे काशी माता! आप में एक ऐसी अपूर्व स्वाभाविक शक्ति प्रत्यक्ष दिखाई देती है, जो जीव द्वारा किए गए सभी शुभ और अशुभ कर्मों को शान्त कर देती है। इस भूमण्डल में ऐसी शक्ति और कहीं नहीं जान पड़ती। शिवजी सभी जगह सदा वर्तमान रहते हैं; परन्तु आप में बैठकर वे योग्य-अयोग्य का विचार किए विना ही सबको इस संसार-सागर से पार कर देते हैं। जान पड़ता है कि आपके संयोग से ही भगवान् शिव में यह तारने की शक्ति आ जाती है। आपके सहारे से वे जीवमात्र को, चाहे वह मोक्ष का अधिकारी हो चाहे न हो, मुक्ति दे देते हैं।

आब्रह्मणोऽनन्तभवेषु पुण्यं मद्भावनोपार्जितमल्पमल्पम् ।
तत्तद्वशाद्य यद्यविमुक्तमेकं कदाचिदायाति मम प्रसादात् ॥

भगवान् शङ्कर कहते हैं कि सृष्टि के आरम्भकाल से लेकर जीव के जितने जन्म होते हैं उनमें मेरा भजन

करने से थोड़ा थोड़ा पुण्य इकट्ठा होता जाता है। यदि कोई काशी में आकर बस जाय और उसका शरीर यहीं छूटे तो समझना चाहिए कि यह सब मेरे भजन के द्वारा उत्पन्न होनेवाले पुण्य का ही फल है। साधारण पुण्य से काशी का निवास और काशी का मरण प्राप्त नहीं हो सकता। इसके लिए उन्हीं सदाशिव की शरण जाना चाहिए, इन्हीं के प्रसाद से काशी में मरने का सौभाग्य प्राप्त हो सकता है।

तीर्थानि सर्वाण्यपि मोक्षदानि[1] श्रुतानि सर्वेष्वखिलेषु राजन्।
वाराणसीप्राप्तिफलानि शीघ्रं कालेन चातो व्यवधानवन्ति॥

हे राजन्! सब शास्त्रों में जितने मोक्ष देनेवाले तीर्थ कहे गए हैं वे सब साक्षात् मोक्ष नहीं देते किन्तु उसे दूसरे जन्म में काशी पहुँचा देते हैं और वहाँ पहुँच कर जीव शरीर का परित्याग करता और मुक्त हो जाता है। अयोध्या, मथुरा आदि तीर्थों में मरने से मोक्ष मिलने में एक जन्म का व्यवधान पड़ता है परन्तु काशी में मरते ही मुक्ति मिल जाती है।

---

१ अयोध्या, मथुरा, माया काशी, काञ्ची, अवन्तिका।
पुरी, द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः॥
अयोध्या, मथुरा, हरद्वार, काशी, कांची, अवन्तिका और द्वारका ये सात मोक्ष देनेवाली पुरियाँ हैं।

यत्राचार्यस्त्रिपुरविजयी साधनानां चतुर्णां
संपद्दासः सुलभमशनं स्वैरचारस्तपांसि ।
श्रोतव्यस्य श्रुतिरपि तपः श्रूयते जन्मभाजां
काले काश्यां सुकृतधनिकास्तत्र वासं लभन्ते ॥

(सनत्कुमारसंहिता)

काशीपुरी में त्रिपुर को जीतनेवाले साक्षात् शङ्कर भगवान् श्री तारकमंत्र के उपदेश देनेवाले आचार्य हैं; मोक्ष के चारों* साधन इस पुरी में सदा उपस्थित रहते हैं। भगवती अन्नपूर्णा की कृपा से भोजन आदि का मिलना यहाँ एक दम सुलभ है। प्रतिदिन का चलना, फिरना, उठना, बैठना ही यहाँ तपस्या के समान है। साधारण जीव यहाँ जो कुछ सुनते हैं वही वेद के श्रवण के समान फल देता है। ऐसी उत्तम पुरी काशी में जो बहुत ही पुण्यवान् होते हैं वे ही निवास करने का सौभाग्य पा सकते हैं।

जन्मान्तरसहस्रेषु सञ्चितैः पुण्यकर्मभिः ।
प्राप्ता वाराणसी रम्या प्रासादात् परमेश्वरात् ॥

हजारों जन्मों में मैंने अनेकों पुण्य कर्म किए। वे धीरे धीरे

---

* मोक्ष के चार साधन—परिशिष्ट (६) में देखिए।

सञ्चित होते गए। उन्हीं पुण्यों के फल से परमेश्वर का प्रसाद हुआ और परम मनोहर काशीपुरी मिली।

ये काश्यां संशयाविष्टा मुक्तौ तेषां शरीरिणाम्।
प्राणप्रयाणसमये प्रमाणं परमेश्वरः॥

काशी में मरने से मुक्ति मिलती है या नहीं, इस विषय में कुछ लोगों को सन्देह होता है। परन्तु भगवान् शंकर इसका प्रमाण मरने के समय अवश्य दे देते हैं। अर्थात् जिस समय जीव अपनी देह का परित्याग करता है उसी समय भगवान् सदाशिव उसे तारकमन्त्र के उपदेश के द्वारा मुक्त कर देते हैं और उस जीव को काशी में मरने से मुक्ति मिलती है इसका प्रमाण मिल जाता है।

मोक्षस्य निर्णयः काश्यामित्थमेकेन जन्मना।
सर्वेषामेव जन्तूनां प्रमाणैः प्रतिपादितः॥

इस पुस्तक में श्रुति, स्मृति, पुराण आदि के अनेक प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध कर दिया गया है कि सभी स्थावरों और जङ्गमों को एक ही जन्म में काशी के सेवन से मोक्ष मिल जाता है।

किं बहूक्तेन—

येन केनापि यः कश्चित् निमित्तेन परित्यजेत्।
काश्यां प्राणान् सर्वजन्तुर्मुक्त इत्यवगम्यताम्।

बहुत विस्तार न करके संक्षेप में यह कह दिया जाता है कि

कोई भी जन्तु किसी कारण से काशी में शरीर का परित्याग करे तो वह अवश्य मुक्त हो जायगा, इसमें लेशमात्र सन्देह नहीं है ।

इति श्रीसुरेश्वराचार्यविरचितः सकलश्रुतिस्मृतिनिर्द्धारितः काशीमोक्षनिर्णयः समाप्तः ।

श्री सुरेश्वराचार्यजी का बनाया हुआ सब श्रुतियों और स्मृतियों द्वारा प्रमाणित काशी-मोक्ष-निर्णय नामक ग्रन्थ समाप्त हो गया ।

इति शम्

श्रीविश्वनाथो विजयतेतराम् ।



परिशिष्ट

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

काशी-मोक्ष-विचार



श्रीशंकर-पद-पद्म को, वन्दि सदा सुख-कन्द ।
"काशी-मोक्ष-विचार" यह, रचौं त्याग छल-छन्द ॥

शिवगीता—

गर्भजन्मजरामृत्युसंसार-भवसागरात् ।
तारयामि यतो भक्तं तस्मात्तारोऽहमीरितः ॥

अर्थ—शिवजी कहते हैं कि गर्भवास, जन्म, जरा और मृत्युरूपी संसार-सागर से मैं भक्तों को तार देता हूँ । इसलिये मेरा नाम ❀ 'तारक' कहा गया है ॥

❀ अकारः प्रथमाक्षरो भवति, उकारो द्वितीयाक्षरो भवति, मकारस्तृतीयाक्षरो भवति, अर्द्धमात्रश्चतुर्थाक्षरो भवति, बिन्दुः पंचाक्षरो भवति, नादः षष्ठाक्षरो भवति, तदेव 'तारकं' ब्रह्म त्वं विद्धि ।

भस्मजाबालोपनिषद्-

त्रिशूलगां काशीमधिश्रित्य त्यक्तासवोऽपि मय्येव संविशन्ति । एष एवादेशः एष एव उपदेशः । एष एव परमो धर्मः ।

अर्थ—भगवान् शंकर के त्रिशूल पर स्थित काशीपुरी में रहकर प्राण त्यागने पर जीव मुक्ति को ही पाता है । मेरा यही आदेश, यही उपदेश और यही परम धर्म है ।

जाबालोपनिषद्-

अत्र हि जन्तोः प्राणेषूत्क्रममाणेषु † रुद्रस्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे येनासावमृतीभूत्वा मोक्षीभवति तस्मादविमुक्तमेव निषेवेत अविमुक्तं न विमुंचेत् ।

अर्थ—काशी में प्राण त्यागने के समय दुःखों को नाश करनेवाले रुद्र भगवान् 'तारक-मंत्र' देते हैं। जिस मन्त्र के प्रभाव से जीव जन्म-मरण से रहित हो जाता है । अतः काशी-सेवन अवश्य करे । इस अविमुक्तपुरी का निवास कभी भी न छोड़े ।

---

† रुद्रः—रु दुःखं द्रावयतीति रुद्रः, रुद्रमित्यप्युच्यते । तस्माच्छिवः परमकारणम् ।

प्राणाग्निहोत्रोपनिषद्–

वाराणस्यां मृतो वापि इदं वा ब्रह्म यः पठेत् ।
एकेन जन्मना जन्तुर्मोक्षं च प्राप्नुयादिति ॥

अर्थ—जो प्राणी श्रीकाशीजी में देह-त्याग करता अथवा अन्त में तारकब्रह्म के मंत्र को पढ़ता है। उसे एक ही जन्म में मुक्ति मिल जाती है ।

मुक्तिकोपनिषद्–

यत्र कुत्रापि वा काश्यां मरणे स महेश्वरः ।
जन्तोर्दक्षिणकर्णे तु मत्तारं समुपादिशत् ॥
काश्यां तु ब्रह्मनालेस्मिन्मृतो मत्तारमाप्नुयात् ।
पुनरावृत्तिरहितां मुक्तिं प्राप्नोति मानवः ॥

अर्थ—श्रीकाशीजी, विशेष करके ब्रह्मनाल के बीच में जो मरता है, वह मनुष्य जन्ममरण से रहित होकर मुक्त हो जाता है ।

महाभारत अनुशासनपर्व–

कीटपक्षिपतङ्गानां तिरश्चामपि केशव ।
महादेवप्रपन्नानां न भयं विद्यते क्वचित् ॥

अर्थ—कीट, पक्षी, पतंग आदि तिर्यग्योनि के प्राणी भी यदि महादेवजी की शरण लेते हैं तो उनको जन्म-मरण का भय नहीं रह जाता ।

आत्मपुराण–

कृमिकीटपतङ्गो वा ब्राह्मणो वा बहुश्रुतः ।
मृतश्चतुर्विधो जन्तुस्त्रिनेत्रत्वमुपैति हि ॥

अर्थ—काशी में मरने से कृमि-कीट-पतङ्ग तथा विद्वान् ब्राह्मण, ये चारों प्रकारके प्राणी भगवान् त्रिनेत्रत्व (शिवत्व) को प्राप्त होते हैं ।

श्रीमद्भागवत द्वादशस्कन्ध–

क्षेत्राणां चैव सर्वेषां यथा काशी ह्यनुत्तमा ।

अर्थ—सूतजी ऋषियों से कहते हैं कि अनेक क्षेत्र हैं, पर उनमें काशी ही एक उत्तम क्षेत्र है ।

दर्शनाद्देवदेस्य ब्रह्महत्या प्रणश्यति ।
प्राणानुत्सृज्य तत्रैव मोक्षं प्राप्नोति मानवः ॥

अर्थ—देवों के देव महादेवजी के दर्शन से ब्रह्महत्या का भी पाप छूट जाता और काशीक्षेत्र में प्राणत्याग करने से मनुष्य मोक्षपद पाता है ।

श्रीमत्स्वामी शंकराचार्यजी–

काशी धन्यतमा विमुक्तनगरी सालंकृता गंगया ।
अत्रेयं मणिकर्णिका सुखकरी मुक्तिर्हि तत्किंकरी ॥

अर्थ—काशीजी धन्यतमा अर्थात् अत्यन्त पुण्यरूप उत्तम

नगरी है, जहाँ गंगाजी शोभायमान हैं। उसमें भी मणिकर्णिका उत्तम सुख देनेवाली है क्योंकि मुक्ति उसकी दासी है।

लिंगपुराण-

काश्यां यो वै मृतश्चैव तस्य जन्म पुनर्न हि।

अर्थ—काशी में मरनेवाले प्राणी फिर संसार में जन्म नहीं लेते; क्योंकि वे सायुज्य मुक्ति पाजाते हैं।

शिवरहस्य-

जले स्थलेऽन्तरिक्षे वा यत्र कुत्रापि वा मृताः।
तारकं ज्ञानमासाद्य कैवल्यपदभागिनः॥

अर्थः—श्रीकाशीजी में पृथ्वी, जल, आकाश आदि किसी जगह भी यदि मृत्यु हो तो वह प्राणी भगवान् शिवजी के तारक-मन्त्रोपदेश-द्वारा मोक्षपद का भागी होता है।

स्कन्दपुराण-

असीवरुणयोर्मध्ये पञ्चक्रोशं महत्तरम्।
अमरा मृत्युमिच्छन्ति का कथा त्वितरे जनाः॥

अर्थः—असी और वरुणा के बीच में पञ्चकोश (काशीक्षेत्र) अतिशय श्रेष्ठ है, क्योंकि उसमें देवता लोग भी जन्म लेकर मृत्यु चाहते हैं। तब इतर मनुष्यों की कथा ही क्या है।

काशीखण्ड—

अन्यानि मुक्तिक्षेत्राणि काशीप्राप्तिकराणि च ।
काशीं प्राप्य विमुच्यन्ते नान्यथा तीर्थकोटिभिः ॥

कीटाः पतङ्गा मशकाश्च वृक्षा जले
स्थले ये विचरन्ति जीवाः ।
मण्डूकमत्स्याः कृमयोऽपि काश्यां
त्यक्त्वा शरीरं शिवमाप्नुवन्ति ॥

अर्थ— अन्यान्य मुक्तिक्षेत्र केवल काशी को प्राप्त कराते हैं; परन्तु काशी को पाकर प्राणी मुक्त हो जाते हैं । अर्थात् अन्य करोड़ों तीर्थों से बड़ी यह काशीपुरी है । कीट, पतंग, मच्छड़, वृक्ष, जलचर और थलचर आदि सभी प्राणी यहाँ अपने शरीर को छोड़कर कल्याणपद को प्राप्त होते हैं ॥

येनैकजन्मना मुक्तिर्यस्मात् करतले स्थिता ।
अनेकजन्मसंसारबन्धनिर्मोक्षकारिणी ॥

अर्थ—श्रीकाशीजी में एक ही जन्म में मुक्ति मुट्ठी में आ जाती है । क्योंकि यह अनेक बार जन्म देनेवाले संसार-बन्धन की नाशकारिणी है ।

वायवीयसंहिता—

मुक्तेश्च प्रापकं ह्येतच्चतुष्टयमुदाहृतम् ।
शिवार्चनं रुद्रजप उपोष्यं च दिनत्रयम् ।
वाराणस्यां च मरणं मुक्तिरेषा चतुर्विधा ॥

अर्थ—मुक्तिको देनेवाले चार साधन हैं। जैसे-(१) शिवपूजन (२) रुद्रजाप (३) उपवास और (४) काशीजी में शरीरत्याग ।

कुत्रचिच्च शुभं वर्धेत् कुत्रचित्पापसंक्षयः ।
सर्वेषां कर्मणां नाशो नास्ति काशीपुरीं विना ॥

अर्थ—कोई क्षेत्र पुण्य को बढ़ाता, कोई पापों का नाश करता, परन्तु काशीवास समग्र कर्मों का नाश करनेवाला है । अर्थात् मुक्ति देनेवाली केवल श्रीकाशीपुरी ही है ।

शिवपुराण—

सर्वे वर्णा आश्रमाश्च बालयौवनवार्द्धकाः ।
अस्यां पुर्यां मृताश्चेत्स्युर्मुक्ता एव न संशयः ॥

अर्थ—सब और वर्ण आश्रमवाले बालक, वृद्ध तथा युवावस्था-वाले प्राणी काशीजी में शरीरत्याग करने से मुक्त होते हैं । इसमें कोई संशय नहीं है ।

मत्स्यपुराण-

एक एव प्रभावोऽस्ति क्षेत्रस्य परमेश्वरि ।
एकेन जन्मना देवि मोक्षं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥

अर्थ—इस (काशीजी) की सबसे बड़ी महिमा यह है कि यहाँ एक ही जन्म में जीव उत्तम मोक्षपद को प्राप्त कर लेता है ।

नारदपुराण-

योजनानां शतस्थोऽपि यो विमुक्तं स्मरेद्यदि ।
बहुपातकपूर्णोऽपि स पापैर्न प्रबाध्यते ॥

अर्थ—यदि एक सौ योजन पर स्थित रहकर भी श्रीकाशीजी का स्मरण करे तो बहुत पापकर्म से पूर्ण होने पर भी वह प्राणी पापों से रहित हो जाता है ।

कूर्मपुराण-

यत्र साक्षान्महादेवो देहान्ते स्वयमीश्वरः ।
व्याचष्टे तारकं ब्रह्म तदेवातिविमुक्तिदम् ॥

अर्थ—श्रीकाशीजी में साक्षात् शंकरजी जीव को मरणसमय में तारकब्रह्म का उपदेश देते हैं । यह वही मोक्षदायिनी काशीपुरी है ।

ब्रह्मवैवर्तपुराण–

अविमुक्तं समासाद्य न त्यजेन्मोक्षकामुकः ।
क्षेत्रन्यासं दृढं कृत्वा वसेद्धर्मपरः सदा ॥

अर्थ—अविमुक्त काशीक्षेत्र को पाकर मुक्ति की इच्छा रखने-वाला पुरुष क्षेत्रसंन्यास को दृढ़ करके धर्मपरायण होकर काशी-वास करे।

पद्मपुराण–

तीर्थांतराणि क्षेत्राणि विष्णुभक्तिश्च नारद ।
अन्तःकरणसंशुद्धिं जनयन्ति न संशयः ॥
वाराणस्यपि देवर्षे तादृश्येव परन्तु सा ।
प्रकाशयति ब्रह्मैक्यं तारकस्योपदेशतः ॥

अर्थ—अन्यान्य तीर्थ तथा विष्णुभक्ति आदि केवल अन्तः-करण की शुद्धि करती हैं। इसमें सन्देह नहीं; परन्तु हे नारदजी! काशी तारकब्रह्म के उपदेश से 'मुक्तिपद' को प्रदान करती है॥

काशीखण्ड–

उत्तरं दक्षिणं वापि अयनं न विचारयेत् ।
सर्वोऽप्यस्य शुभः कालो ह्यविमुक्ते प्रिये यतः ॥

अर्थ—हे प्रिये! काशी में मरण के लिए कोई समय या

पर्वविशेष की गिनती नहीं है। क्योंकि इस अविमुक्तक्षेत्र में जो मरता है, उसके लिये सब समय और दिन एक सा है।

सनत्कुमारसंहिता–

रथान्तरे मूत्रपुरीषमध्ये चांडालवेश्मन्यथ वा श्मशाने।
कृतप्रयत्नोऽप्यकृतप्रयत्नो देहावसाने लभतेऽत्र मोक्षम्॥

अर्थ—इस पुरी की गलियों में, मूत्र, विष्ठा से दूषित स्थानों में, चांडाल के गृह में या श्मशानभूमि में कहीं भी विधि से या अविधि से मरने पर जीव मोक्षपद को प्राप्त करता है।

काशीखण्ड–

संसारभयभीता ये ये बद्धाः कर्मबन्धनैः।
येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसी गतिः॥
श्रुतिस्मृतिविहीना ये शौचाचारविवर्जिताः।
येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसी गतिः॥

अर्थ—जो लोग सांसारिक भय से डरे हुए हैं, अथवा जो कर्मपाश से बँधे हुए हैं और जिन्हें कहीं गति नहीं मिलती, उनके लिये काशी गति देनेवाली है। जो वेद–शास्त्र नहीं जानते अथवा शौचादि नित्यक्रियाओं से रहित हैं और जिनकी कहीं गति नहीं, उनके लिये भी यह काशी नगरी मोक्षदायिनी है।

पद्मपुराण—

काश्यां मृतस्तु सालोक्यं साक्षात्प्राप्नोति सत्तमः ।
ततः सरूपतां याति ततः सान्निध्यमश्नुते ॥
ततो ब्रह्मैकतां याति न परावर्तते पुनः ॥

अर्थ—काशी में मरे हुए सज्जन साक्षात् सालोक्य को प्राप्त करके सारूप्यमुक्ति पाते हैं। फिर वे सान्निध्य मुक्ति का भी सुख भोगते हैं। तत्पश्चात् ब्रह्मैकता को प्राप्त करके पुनः संसार में नहीं आते।

ब्रह्मपुराण—

चतुर्धा वितते क्षेत्रे सर्वत्र भगवाञ्छिवः ।
व्याचष्टे तारकं वाक्यं ब्रह्मात्मैकप्रबोधकम् ॥

अर्थ—इस क्षेत्र में चारों ओर फैले हुए भगवान् शिवजी ब्रह्मैकत्व को बतानेवाले 'तारक' मन्त्र का उपदेश करते हैं॥

रामायण—

मुक्ति जन्म महि जानि, ज्ञान खानि अघ-हानि कर ।
जहँ बस शम्भु भवानि, सो काशी सेइय कस न ॥

अर्थ—मुक्ति का जन्मस्थान, ज्ञान की खानि और पापों को नाश करनेवाली इस काशीपुरी में अन्नपूर्णासहित श्रीविश्वनाथजी

निवास करते हैं। ऐसी पुरी में क्यों न निवास किया जाय, अर्थात् अवश्य काशीवास करना चाहिये।

गर्गसंहिता—

विश्वेश्वरस्य देवस्य काशीनाम्ना महापुरी।
यत्र पापी मृतः सद्यः परं मोक्षं प्रयाति हि॥

अर्थ—यह काशी भगवान् श्रीविश्वनाथजी की महापुरी है। यहाँ पर प्राण छोड़नेवाला प्राणी उत्तम मोक्ष को प्राप्त होता है।

लघु आश्वलायनस्मृति—

यः कश्चिन्मानवो लोके वाराणस्यां त्यजेद्वपुः।
स चाप्येको भवेन्मुक्तो नान्यथा मुनयो विदुः॥

महर्षियों ने कहा है कि जो लोग मनुष्यलोक में जन्म लेकर काशी में शरीर त्याग करते हैं, वे मुक्त हो जाते है॥

पद्मपुराण पातालखण्ड—

यूकाश्च दंशा अपि मत्कुणाश्च मृगादयः कीटपिपीलिकाश्च।
सरीसृपा वृश्चिकसूकराश्च काशीमृताः शंकरमाप्नुवंति॥

अर्थ—यूका (जूं) डाँस, खटमल, मृगादि जीव, कीट, चींटी तथा सर्पादि, बिच्छू और शूकर भी काशी में मर कर शिव को प्राप्त होते हैं।

इति।

परिशिष्ट (२)

चालीस संस्कार

१ गर्भाधान २ पुंसवन ३ सीमन्तोन्नयन ४ जातकर्म ५ नामकरण ६ अन्नप्राशन ७ चौल ८ उपनयन ९ ऋग्वेदव्रत १० यजुर्वेदव्रत ११ सामवेदव्रत १२ अथर्ववेदव्रत १३ समावर्तन १४ विवाह पञ्चमहायज्ञ—१५ देवयज्ञ १६ पितृयज्ञ १७ मनुष्ययज्ञ १८ भूतयज्ञ १९ ब्राह्मणयज्ञ सप्तपाकयज्ञ—२० अष्टका २१ पार्वण (स्थालीपाक) २२ श्राद्ध (मासिक) २३ श्रावणी (उपाकरण) २४ आग्रहायण २५ शूलगव (चैत्री) २६ इन्द्रध्वज होम सप्तहविर्यज्ञ—२७ अग्न्याधान २८ अग्निहोत्र २९ दर्शपौर्णमास ३० आग्रयण ३१ चातुर्मास्य ३२ निरूढपशुबन्ध ३३ सौत्रामणी सप्तसोमयज्ञ—३४ अग्निष्टोम ३५ अत्यग्निष्टोम ३६ उक्थी ३७ षोडशी ३८ वाजपेय ३९ अतिरात्र ४० अप्तोर्याम

परिशिष्ट (३)

आत्मा के आठ गुण

"दया सर्वभूतेषु क्षान्तिरनसूया शौचमनायासो मङ्गलमकार्पण्यमस्पृहेति" गौतमधर्मसूत्र ८, २१

दया:—

आत्मवत्सर्वभूतेषु यश्शिवाय हिताय च ।
वर्तते सन्ततं हृष्टः कृत्स्ना ह्येषा 'दया' स्मृता ॥

क्षान्ति:—

आक्रुष्टोऽभिहतो वापि नाक्रोशेन्नापि ताडयेत् ।
अदुष्टो वाङ्मनःकायैः सा तितिक्षा 'क्षमा' स्मृता ॥

अनसूया:—

यो धर्ममर्थं कामं वा लभते मोक्षमेव वा ।
न द्विष्यात्तं सदा प्राज्ञः 'अनसूये' ति सा स्मृता ॥

शौच:—

द्रव्यशौचं मनश्शौचं वाक्शौचं कायिकं तथा ।
'शौचं' चतुर्विधं प्रोक्तमृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥

अनायास:—

यदारम्भे भवेत् पीडा नित्यमत्यन्तमात्मनः ।
तद्वर्जयेद्धर्म्यमपि 'अनायासः' स उच्यते ॥

मङ्गल:—

प्रशस्ताचरणं नित्यमप्रशस्तविवर्जनम् ।
एतद्धि 'मङ्गलं' प्रोक्तं मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥

अकार्पण्यः—

आपद्यपि च कष्टायां भवेद्दीनो न कस्यचित् ।
सविभागरुचिश्च स्याद् 'अकार्पण्यं' तदुच्यते ॥

अस्पृहाः—

विवर्जयेदसन्तोषं विषयेषु सदा नरः ।
परद्रव्याभिलाषं च सा 'अस्पृहा' कथ्यते बुधैः ॥

आत्मा के इन गुणों से लाभ

क्षमावान् जयते भूमिं दयावान् सुखमश्नुते ।
अनसूयुर्लभेत् स्वर्गं शौचेनाप्यात्ममेव च ॥
मङ्गलादपि सम्पूज्य इह लोके परत्र च ।
सुरसाम्यमनायासात् अकार्पण्यात् प्रकृतौ लयम् ॥
अस्पृहो लभते नित्यमनन्तं सुखमेव च ।
सर्वैस्तु ब्रह्मणः स्थानं संस्कारैस्तु तथैव च ॥

परिशिष्ट (४)

अगस्त्य की कथा

एक वार देवर्षि नारद अनेक लोकों में पर्यटन करते हुए विन्ध्य पर्वत पर पहुँचे । विन्ध्य ने उनका बहुत स्वागत किया और

हाथ जोड़कर दर्शन देने की कृपा करने का कारण पूछने लगा।

नारद ने बहुत गम्भीर भाव से कहा कि हे पर्वतराज! हिमालय, सुमेरु आदि को अपने बड़प्पन का अभिमान है और वे अपने सामने सबको तुच्छ समझते हैं। मुझे तुम्हारे ऊपर दया आती है कि तुम इतने उत्तम और सज्जन हो तिस पर भी वे लोग तुम्हें कुछ नहीं समझते। मैं तुमसे कहता हूँ कि इसका प्रतीकार करना तुम्हारा कर्तव्य है।

नारद अपना काम करके चल दिए। विन्ध्य के मनमें यह बात लग गई। उसने रात ही भरमें अपनी कलेवर इतनी बढ़ायी कि दूसरे दिन सूर्य आदि सभी ग्रहों की गति रुक गई।

विश्व के एक भाग में तो घोर गर्मी और प्रकाश हो गया और दूसरे भाग में घना अन्धकार हो गया। संसार भरमें हाहाकार मच गया। यज्ञ, दान, तप आदि सब बन्द हो गए। सभी लोकों का नित्य कृत्य स्थगित हो गया।

देवता लोग इसके उपाय की खोज में ब्रह्माजी के समीप गए। उन्होंने बताया कि महर्षि अगस्त्य काशी में निवास करते हैं यदि वे चाहें तो विन्ध्य को समझा सकते है।

देवता लोग झटपट उनके आश्रम में जा पहुँचे और संसार की रक्षा करने की प्रार्थना की।

महर्षि अगस्त्य को यह जानकर कि काशी छोड़े बिना काम नहीं चल सकता बहुत ही दुःख हुआ। अन्त में संसार की रक्षा के निमित्त वे दुःखित होते हुए काशी से चले और विन्ध्य के समीप जा पहुँचे।

विन्ध्य उन्हें साष्टाङ्ग दण्डवत् करने के लिए पृथ्वी पर पड़ गया। महर्षि ने कहा कि हे पर्वतराज! मैं तुम्हारे ऊपर परम प्रसन्न हूँ। इस समय मैं दक्षिण की ओर जाना चाहता हूँ इसलिए तुम ऐसे ही झुके रहो मैं निकल जाऊँ और जब तक लौटकर न आऊँ इसी प्रकार लेटे रहना।

महर्षि अगस्त्य दक्षिण की ओर चले गए और आज तक न लौटे। विन्ध्य भी आज तक उनकी आज्ञा के अनुसार उसी प्रकार पड़ा है।

परिशिष्ट (५)

साधनचतुष्टय

१ नित्यानित्यवस्तुविवेकः—केवल पर ब्रह्म ही नित्य है और इसके अतिरिक्त सभी पदार्थ अनित्य हैं इस बात का ज्ञान रहना।

२ इहामुत्रार्थफलभोगविरागः—इस संसार के सुखों और स्वर्ग आदि के सुख के भोगने की इच्छा न होना।

३ शमादिषट्सम्पत्तिः—शम, दम, उपरम, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान इन छ सम्पत्तियों का लाभ ।

(क) शमः—मन को वश में रखना अर्थात् मनके ऊपर पूरा अधिकार होना ।

(ख) दमः—आँख कान, नाक आदि पाँच ज्ञानेन्द्रियों और हाथ पैर आदि पाँच कर्मेन्द्रियों को अपने अधीन रखना ।

(ग) उपरमः—अपने धर्मका आचरण और पालन करना ।

(घ) तितिक्षाः—गर्मी, सर्दी, सुख-दुःख आदि को विना कष्ट का अनुभव किए सह लेना ।

(ङ) श्रद्धाः—गुरु के कथन में और वेदान्त के वचनों में विश्वास रखना ।

(च) समाधानः—चित्त की एकाग्रता ।

४ मुमुक्षुत्वः—मोक्ष प्राप्त करने की इच्छा ।



